संस्कृत-नाट्य-मञ्जरी

सत्यव्रतशास्त्री

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

संस्कृत-नाट्य-मञ्जरी

सम्पादकः
सत्यव्रतशास्त्री
एम्. ए., एम्. ओ. एल्., पी-एच्. डी.
दिल्लीविश्वविद्यालये संस्कृतप्राध्यापकः

प्रकाशकः
मेहरचन्द लक्ष्मणदास
अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
२७३६ कूचा चेलाँ, दरियागंज
दिल्ली-६

[प्रेक्षागृह—१ अनसारी रोड, नया दरियागंज, दिल्ली-६]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

निवेदनम्

संस्कृतनाट्यमञ्जरीति नामधेयोऽयं नाट्यसङ्ग्रह उच्चतरमाध्यमिकशिक्षालयेषु संस्कृतमधिजिगांसूनां छात्राणां कृते कलितः। तैः सुप्रवेशः सुग्रहश्च यथा स्यात्तथा च कृतः। संस्कृतनाट्यवाङ्मये सुप्रथितानां भासकालिदासादीनां नैकेषां विद्वन्मौलिमण्डनायमानानां रूपककर्तॄणां कृतिभ्योंऽशाः केचनात्र समुद्धृताः। एतदध्ययनेन प्रमुखानां संस्कृतरूपककर्तॄणां परिचयश्छात्रैर्यथोपलभ्यते तथैव मया प्रयत्तम्। किञ्च तादृशा एवांशा अत्र सङ्कलिता यत्र बालानां संलापो वा चेष्टा वा चित्रिता। एतद्धि नाम वैशिष्ट्यमस्य ग्रन्थस्य। बालार्थं प्रस्तूयमाने ग्रन्थे बालचरितादिरूपणात्मकास्तद्भावतत्क्रीडातच्चेष्टितादिप्रस्फोरकाश्च यदि सन्दर्भा सङ्गृह्येरंस्तदा बालानां तत्र विशिष्टाऽभिरुचिरुदियाद् इति मे मतम्। अत एतादृशा एव सन्दर्भाः संस्कृतनाट्यवाङ्मयाद्विचार्य विचार्य मया समुच्चिताः। अथ च नूतनादपि कविजग्गूवकुलभूषणविरचितात्प्रसन्नकाश्यपाख्याद्रूपकादाद्योंऽशः समुद्धृतः। मन्ये विद्यार्थिनां रोचकोऽयं स्यात्। दुष्यन्तेन भरतेन च सङ्गता शकुन्तलाऽतीते भूयस्यनेहसि यदा कण्वाश्रमं गच्छति तदा किं पश्यति किं चानुभवतीत्यस्य हारि काल्पनिकं च चित्रमत्र समर्पितम्। एतेन च्छात्राणां नवनिर्माणरसास्वादः सुलभः स्यात्संस्कृतं मृतभाषेति केषाञ्चित् साहसिकानां दुरुक्तं चापोहितं स्यात्। आशासेऽध्यापका अध्यायकाश्च समं समादरिष्यन्त इमं मे ग्रन्थमुत्साहं च मे समेधयिष्यन्तीति विनीतवद् विनिवेद्य विरमति—

देहल्याम् विदां विधेयः

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्याम् सत्यव्रतः शास्त्री

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

निवेदनम्

संस्कृतनाट्यमञ्जरीति नामधेयोऽयं नाट्यसङ्ग्रह उच्चतरमाध्यमिकशिक्षालयेषु संस्कृतमधिजिगांसूनां छात्राणां कृते कलितः। तैः सुप्रवेशः सुग्रहश्च यथा स्यात्तथा च कृतः। संस्कृतनाट्यवाङ्मये सुप्रथितानां भासकालिदासादीनां नैकेषां विद्वन्मौलिमण्डनायमानानां रूपककर्तॄणां कृतिभ्योंऽशाः केचनात्र समुद्धृताः। एतदध्ययनेन प्रमुखानां संस्कृतरूपककर्तॄणां परिचयश्छात्रैर्यथोपलभ्यते तथैव मया प्रयत्तम्। किञ्च तादृशा एवांशा अत्र सङ्कलिता यत्र बालानां संलापो वा चेष्टा वा चित्रिता। एतद्धि नाम वैशिष्ट्यमस्य ग्रन्थस्य। बालार्थं प्रस्तूयमाने ग्रन्थे बालचरितादिरूपणात्मकास्तद्भावतत्क्रीडातच्चेष्टितादिप्रस्फोरकाश्च यदि सन्दर्भा सङ्गृह्येरंस्तदा बालानां तत्र विशिष्टाऽभिरुचिरुदियाद् इति मे मतम्। अत एतादृशा एव सन्दर्भाः संस्कृतनाट्यवाङ्मयाद्विचार्य विचार्य मया समुच्चिताः। अथ च नूतनादपि कविजग्गूवकुलभूषणविरचितात्प्रसन्नकाश्यपाख्याद्रूपकादाद्योंऽशः समुद्धृतः। मन्ये विद्यार्थिनां रोचकोऽयं स्यात्। दुष्यन्तेन भरतेन च सङ्गता शकुन्तलाऽतीते भूयस्यनेहसि यदा कण्वाश्रमं गच्छति तदा किं पश्यति किं चानुभवतीत्यस्य हारि काल्पनिकं च चित्रमत्र समर्पितम्। एतेन च्छात्राणां नवनिर्माणरसास्वादः सुलभः स्यात्संस्कृतं मृतभाषेति केषाञ्चित् साहसिकानां दुरुक्तं चापोहितं स्यात्। आशासेऽध्यापका अध्यायकाश्च समं समादरिष्यन्त इमं मे ग्रन्थमुत्साहं च मे समेधयिष्यन्तीति विनीतवद् विनिवेद्य विरमति—

देहल्याम्
फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्याम्

विदां विधेयः
सत्यव्रतः शास्त्री

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अनुक्रमणी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भूमिका

संस्कृत नाटक का उद्भव और विकास

उद्भव

वर्षों की खोज के बाद भी संस्कृत-नाटकों के उद्भव के विषय में विद्वान् किसी एक दृढ़ निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ रहे हैं। इसीलिए संस्कृत के नाट्य-साहित्य की अत्यधिक पूर्ण तथा बहुमुखी प्रगति होने पर भी यह भाग अनिश्चितता से आवृत है। किन्तु परम्परा तथा भाषा के आधार पर इस प्रश्न पर प्रकाश डाला जा सकता है। नट (actor) तथा नाटक (play) ये दो शब्द संस्कृत की धातु 'नृत्' तथा उसके प्राकृत रूप 'नट्' से बने हैं। नट् का अर्थ है नृत्य, जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय नाटक का प्राथमिक रूप नृत्यात्मक था। नाटक का पूर्व रूप मानो एकपात्रात्मक अभिनय था जिसमें गीतों का प्रमुख स्थान रहा होगा। गुजराती भाषा का 'भरत' शब्द जिसका अर्थ 'गायक' है संस्कृत-नाटक के पौराणिक उद्भवकर्ता 'भरत' की ओर ही संकेत करता है। भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक पंचम वेद है जिसकी सृष्टि ब्रह्मा ने की और जिसका पृथ्वी पर प्रचार भरत ने किया। भरत के नाट्यशास्त्र में उसकी उत्पत्ति तथा उसके मुख्य तत्त्वों को कहाँ कहाँ से ग्रहण किया, इस विषय में एक बहुत ही सुन्दर श्लोक मिलता है—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

'ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस को लेकर 'नाट्यवेद' का निर्माण किया'।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

आज के पूर्णतया विकसित नाटक के प्रधान अंग भी संवाद, संगीत, नृत्य तथा अभिनय ही हैं। वैदिक काल के मन्त्रों में इन सभी का किसी न किसी रूप में साक्षात्कार हो जाता है। ऋग्वेद के यम यमी, उर्वशी पुरूरवा आदि संवादों में भी नाटकीय तत्त्व पाये जाते हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर पाश्चात्य विद्वान् मैकडानल भी नाटक-साहित्य का उद्भव वैदिक मन्त्रों से मानते हैं जबकि दूसरे विद्वान् विन्टरनिट्स इस मत से कदापि सहमत नहीं हैं। कुछ अन्य पाश्चात्य विद्वान्—हिलीब्रांड् तथा कोनो इत्यादि का विश्वास है कि वैदिक यज्ञ के क्रिया-कलापों में भी नाटकीय तत्त्व निहित थे, किन्तु यह मत अधिक समीचीन मालूम नहीं पड़ता क्योंकि यज्ञीय क्रिया-कलाप तथा अभिनय में अत्यधिक अन्तर है। वैदिक कर्मकाण्ड के साथ-ही-साथ धार्मिक नृत्य जिनमें मूक आंगिक अभिनय प्रमुख है, नाटक के उद्भव का प्रमुख कारण माने जा सकते हैं। किन्तु ये कारण अप्रत्यक्ष रूप से ही नाटकीय परम्परा को प्रभावित कर सकते हैं, प्रत्यक्ष रूप में नहीं, क्योंकि वास्तविक नाटक के विकसित रूप का आभास हमें वेदों में कहीं भी प्राप्त नहीं होता।

वैदिक काल के पश्चात् रामायण और महाभारत में नाटकीय तत्त्वों का अधिक स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है। महाभारत में 'रङ्ग-शाला' शब्द का उल्लेख निश्चय ही उस सभा-भवन से है जहाँ नाटक का अभिनय होता होगा। इसी प्रकार 'नट' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि अभिनय करने में चतुर व्यक्ति को ही इस विशेषण से विभूषित किया गया है। हरिवंश में रामायण की कथा पर आधारित एक नाटक के अभिनय का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार रामायण में आये शब्द—नट, नर्तक तथा रङ्ग—इत्यादि भी नाटक के विकसित रूप की ओर संकेत करते हैं। रामायण और महाभारत जैसी धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त धार्मिक पर्वों और उत्सवों की भी जिनमें बंगाल की यात्राएँ, रासलीला इत्यादि सम्मिलित हैं नाटक के विकास में काफ़ी बड़ी देन है। इसी आधार पर पाश्चात्य विद्वान् पिशेल का यह मत कि भारतीय

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नाटक की उत्पत्ति कठ-पुतलियों के नृत्य से आरम्भ हुई, निर्मूल सिद्ध हो जाता है।

संस्कृत साहित्य का प्रधान अङ्ग व्याकरण भी नाटक के उद्भव की ओर पर्याप्त प्रकाश डालता है। पाणिनि के 'नटसूत्र' में सम्भवतः नाट्य-शास्त्र का ही उल्लेख है जिससे सिद्ध होता है कि इस लक्षण-ग्रन्थ की रचना के पूर्व कुछ उत्कृष्ट नाटकों की रचना हो चुकी होगी जिनके आधार पर नाट्य-शास्त्र जैसे लक्षण-ग्रन्थ की रचना हुई। पतञ्जलि अपने महाभाष्य में दो नाटक 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' का स्पष्ट उल्लेख करते हैं। इस पर्यालोचन से यह भी सिद्ध होता है कि भारतीय नाटक का उद्भव और विकास कृष्ण और विष्णु भक्ति से सम्बन्धित है तथा प्रारम्भिक नाट्य कृतियाँ धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थीं और इनमें देवताओं से सम्बन्धित कथाएँ संगीत, नृत्य और गद्य पर आधारित थीं।

नाटक-साहित्य में स्थान-स्थान पर यवनिका शब्द का प्रयोग रंग-मंच पर लगे परदे के लिए आया है। यह शब्द केवल यवन देश से आये हुए कपड़े से बने हुए परदे के कारण ही प्रयुक्त होता है इसलिए कई पाश्चात्य विद्वानों का यह विश्वास कि भारतीय नाटक पर ग्रीक देश का प्रभाव है समीचीन नहीं जँचता।

पाश्चात्य विद्वान् रिजवे का विश्वास है कि भारतीय-नाटक उस परम्परा का विकसित रूप है जिसमें मृतात्माओं को श्रद्धांजलि भेंट करते समय नृत्य और गीतों से युक्त समारोह होते थे। किन्तु इस मत में सबसे बड़ी त्रुटि उस भावना का आरोप है जिसका वास्तव में संस्कृत-नाटक में पूर्णतया अभाव है। मृतात्माओं को श्रद्धांजलि भेंट करते समय उन्हें प्रसन्न करने का उद्देश्य मुख्य होता था जबकि भारतीय नाटक राम और कृष्ण जैसे महापुरुषों पर आधारित नाटक खेलने वालों तथा दर्शक दोनों के लिए आनन्ददायी हैं। उनमें स्वयं सुख की अनुभूति की प्रधानता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

कुछ विद्वानों का यह विश्वास है कि नाटक की परम्परा का पूर्व-रूप वे समारोह रहे होंगे जो समय-समय पर ऋतु-परिवर्तन के अवसर पर प्राचीन लोग मनाते थे। इनमें पोल दिवस (वसन्त ऋतु में मनाया जाने वाला पाश्चात्य देशीय उत्सव) तथा इन्द्रध्वज (वर्षा ऋतु के अन्त में मनाया जाने वाला प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक उत्सव) प्रमुख हैं। किन्तु नाटक के अभिनय, रङ्गमञ्च तथा कथोपकथन की जटिलता की ओर दृष्टिपात करने पर इन उत्सवों के साथ उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होना असम्भव-सा ही प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध विद्वान् पिशेल का मत है कि संस्कृत-नाटक का उद्भव पुत्तलिका नृत्य से हुआ। अपने कथन की पुष्टि के लिए वे संस्कृत नाटक के सूत्रधार को कठपुतलियों का नृत्य करवाने वाले व्यक्ति का ही प्रतिरूप मानते हैं। जिस प्रकार निष्प्राण कठपुतलियों की क्रियाओं का संचालन एक व्यक्ति करता है उसी प्रकार संस्कृत-नाटक के संचालन का पूर्ण अधिकार सूत्रधार को ही होता है, किन्तु इस मत का एक सबसे बड़ा दोष यह है कि स्वयं में कठपुतली नृत्य का आरम्भ काफ़ी अर्वाचीन है जबकि भारतीय नाटक इससे कहीं प्राचीन हैं। इससे अधिक समीचीन तो यह जान पड़ता है कि स्वयं पुत्तलिका-नृत्य भारतीय नाटक की अधूरी अनुकृति है।

पाश्चात्य विद्वान् लूडर्स छाया-नाटक (shadow play) को नाटक का पूर्व रूप मानते हैं। इसके पक्ष में वे महाभाष्य में वर्णित 'शौभिक' शब्द की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि शौभिक उन मूक अभिनेताओं का निर्देश करता है जो विकसित नाटक पात्रों के पूर्वज होंगे। किन्तु यह मत भी अधिक स्पष्ट नहीं है क्योंकि छाया-नाटक की सत्ता रूपक की सत्ता से अर्वाचीन है।

कुछ लोग राम और कृष्ण का स्वाँग भर के किये जाने वाले अभिनय को नाटक का पूर्व रूप मानते हैं किन्तु यह मत भी भ्रमपूर्ण है क्योंकि स्वाँगवाद की उत्पत्ति के विषय में स्वयं बहुत मतभेद है और

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

इसके विषय में पूण तथा विश्वसनीय ज्ञान के अभाव में इसे नाटक का पूर्व रूप किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त मतों का अवलोकन करने पर जहाँ यह बात सिद्ध होती है कि इनमें से कोई एक मत सर्वथा निर्विवाद नहीं है वहाँ पर यह तथ्य भी पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी तत्त्वों का समय-समय पर संस्कृत-नाटक पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है और संस्कृत-नाटक इन सभी से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके अपनी प्रगति पर निरन्तर बढ़ता रहा है। उसमें यदि ऋग्वेद के संवाद हैं तो स्वाँग भी हैं, कृष्ण-भक्ति का पुट भी है तो छाया-नाटक की छाप भी है, पर्वों का उचित योग है तो मृतक महापुरुषों के चरित्रगान की भावना भी है। अधिक नहीं तो इतना तो हम स्पष्ट रूप से कह ही सकते हैं कि संस्कृत-नाटक का सर्वांगीण विकास पूर्वोक्त सभी विभिन्न तत्त्वों के अद्भुत समन्वय से हुआ है।

विकास

संस्कृत के प्राचीनतम उपलब्ध नाटक हैं—अश्वघोष का शारद्वतीपुत्रप्रकरण और दो अन्य खण्डित नाटक जो जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् लूडर्स को तुरफ़ान की यात्रा में मिले थे। शारद्वतीपुत्रप्रकरण में नौ अङ्क हैं। इसमें शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बौद्ध-धर्म में दीक्षित होने का वर्णन है। इसमें यत्र-तत्र बौद्ध-सिद्धान्तों का उल्लेख है। खण्डित नाटकों में से एक में प्रबोधचन्द्रोदय के समान भावात्मक पात्र (मन, बुद्धि, धैर्यादि) हैं। अश्वघोष की शैली सरल है पर अपाणिनीय प्रयोग उपलब्ध होने से उस पर प्राचीनता की छाप है। यही छाप हमें इसके बाद के नाटककार भास की टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाश में लाई गई १३ कृतियों में भी उपलब्ध होती है। इन १३ कृतियों के भासरचित होने में विद्वानों में पर्याप्त विवाद रहा

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

है, पर इधर कुछ समय से इनके भासरचित होने की ओर आलोचकों का अधिक झुकाव दिखाई देने लगा है। इन १३ नाटकों में स्वप्नवासवदत्त नाटककार की सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसके विषय में निम्नलिखित पंक्तियां अति प्रसिद्ध हैं—

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

भास का काल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है।

भास के बाद के नाटककारों में कालिदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने 'प्रथितयश' वाले भास, कविपुत्र, सौमिल्लकादि की रचनाओं के होते हुए भी विद्वानों के सम्मुख परीक्षार्थ अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया था (सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते)। मेघदूत, ऋतुसंहार और रघुवंश—ये इनकी काव्य-कृतियाँ हैं और मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल इनकी नाट्य-कृतियाँ। पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें भारत का शेक्सपियर कहा है। यह तुलना सम्भवतः इन दोनों महान् नाटककारों की नाटकीय कला की तुलना पर आधारित है पर कालिदास नाटककार के साथ-साथ कवि भी थे। श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार की काव्यरचना में सिद्धहस्त! उनका मानवीय भावों का चित्रण अद्वितीय था, प्रकृतिपर्यवेक्षण, सौन्दर्यानुभूति, बाह्य का अन्तर से तादात्म्य अभूतपूर्व था, इसलिए दो सहस्राब्दियों के बीतने के बाद भी वे अद्वितीय रहे, सर्वथा बेजोड़! अपने समय के 'प्रथितयश' वाले भास कविपुत्रादि से कहीं अधिक प्रथितयश वाले वे हुए। वे कविकुलगुरु बने, उन्होंने स्थायी यश उपार्जित किया (येनार्जितं स्थास्नु यशः पृथिव्याम्), वे कविताकामिनी के विलास बने (कालिदासो विलासः)। कोई अन्य कवि या नाटककार उनकी ऊँचाई को छूने का साहस न कर सका। कुछ वहाँ तक उठे अवश्य, बहुत कुछ पास तक पहुँच गये पर ठीक वहाँ तक नहीं। उन कुछेक में विशेष उल्लेखनीय हैं भवभूति—महावीरचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव के यशस्वी रचयिता। कालिदास

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

और भवभूति—इन दोनों ही नाटककारों में कुछ समानता होते हुए भी मूलभूत भेद था। दोनों की बनावट भिन्न थी, दोनों भिन्न-भिन्न उपादानों से बने थे। जहाँ कालिदास को प्रकृति का सौम्य रूप ही पसन्द था वहाँ भवभूति को उसका उग्र रूप अधिक भाता था। संभवतः उनका स्वभाव अधिक गम्भीर था। उन्हें जीवन का हल्का पक्ष पसन्द ही नहीं था। वे अपने नाटकों में विदूषक तक को नहीं ला सके। वे करुण-रस के कवि थे (कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते), उनके हृदय की कसक पत्थरों और चट्टानों तक को रुला सकती थी (अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्)। जैसा उनका स्वभाव था उसी के अनुसार गम्भीर और कहीं कहीं जटिल और समासबहुल उनकी भाषा थी। उनका मनोभावों का अङ्कन वहुत सूक्ष्म न होने पर भी पर्याप्त मर्मस्पर्शी था।

एक अन्य नाटककार जिनकी नाटच-कृति अत्यन्त प्रसिद्ध हुई है, शूद्रक हैं। इनका मृच्छकटिक पाश्चात्य देशों में अनेक बार अभिनीत हुआ है। इसे अपने समय का सर्वोत्तम सामाजिक नाटक कहा जाता है। इसमें समाज के विभिन्न अङ्गों को चित्रित किया गया है। इसमें जहाँ एक ओर चारुदत्त की उदात्तता है या वसन्तसेना का गुणानुराग है वहाँ दूसरी ओर शर्विलक का सेंध लगाना भी है, वसन्तसेना के आभूषणों की चोरी भी है, चारुदत्त पर मिथ्यारोप भी है।

जैसे शूद्रक का मृच्छकटिक एक सामाजिक नाटक होने से अपना विशिष्ट स्थान रखता है वैसे ही विशाखदत्त का मुद्राराक्षस राजनैतिक नाटक होने से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें हास्य-विनोद का सर्वथा अभाव होने पर भी राजनैतिक दाव पेंच इतने गहरे उतरे हैं कि दर्शक (या पाठक) उनमें ही डूबा रहता है। घटनाचक्र इसमें द्रुत-गति से परिर्वातत होता है और सर्वथा अप्रत्याशित ढंग से जिससे दर्शक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। विशाल संस्कृत नाटच-वाङ्मय में अपने ढंग का यही एकमात्र राजनैतिक नाटक है। अन्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नाटककारों में विशेष उल्लेखनीय हैं श्रीहर्ष जिन्होंने दो नाटिकाएँ रत्नावली और प्रियदर्शिका और एक नाटक नागानन्द लिखा। पहिली दो उदयन की कथा पर आधारित हैं और अन्तिम सम्भवतः बृहत्कथा पर। नागानन्द पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है।

संस्कृत नाट्य-वाङ्मय के अन्य उल्लेखनीय नाटककार हैं—वेणी-संहार के रचयिता भट्टनारायण, अनर्घराघव के रचयिता मुरारि, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, प्रचण्डपाण्डव अथवा बालभारत (एवञ्च प्राकृत सट्टक कर्पूरमञ्जरी) के रचयिता राजशेखर, नैषधानन्द के रचयिता क्षेमेश्वर, हनुमन्नाटक अथवा महानाटक के रचयिता दामोदरमिश्र, प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता कृष्णमिश्र, लटकमेलकप्रहसन के रचयिता शङ्खधर, दूताङ्गद के रचयिता सुभट, प्रद्युम्नाभ्युदय के रचयिता रविवर्मा, सौगन्धिकाहरण के रचयिता विश्वनाथ, मोहपराजय के रचयिता यशःपाल, रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय और सुभद्रापरिणय के रचयिता व्यास रामदेव, शृङ्गारभूषणभाण के रचयिता वामन भट्टबाण, अमृतोदय के रचयिता गोकुलनाथ, पारिजात-नाटक के रचयिता कुमारताताचार्य, जानकीपरिणय के रचयिता रामभद्र दीक्षित, चित्तवृत्तिकल्याण और जीवमुक्तिकल्याण के रचयिता भूमिनाथ, विद्यापरिणयन के रचयिता आनन्दरायमखी, प्रद्युम्न-विजय के रचयिता शङ्कर दीक्षित एवं ययातितरुणनन्दनम् के रचयिता बल्लिशायकवि।

न केवल बीती शताब्दियों में ही संस्कृत नाटक लिखे जाते रहे हैं अपितु उनकी रचना आज भी जारी है। वर्तमान (बीसवीं) शताब्दी में ही ४०० से भी अधिक नाटक लिखे जा चुके हैं जिनका पता लग चुका है। इनके अतिरिक्त भी ऐसे बहुत से होंगे जिनका पता नहीं लग पाया है। इस शताब्दी के नाटककारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—अम्बिकादत्तव्यास, शङ्करलाल माहेश्वर, हरिदास सिद्धान्तवागीश, मूलशङ्कर माणिकलाल याज्ञिक, भट्ट मथुरानाथ दीक्षित, श्रीजीव न्याय-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तीर्थ, यतीन्द्रविमल चौधुरी, कालिपदतर्काचार्य, वे० राघव, लीलाराव दयाल, वाई महालिङ्ग शास्त्री, एस० बी० वेलण्कर, बी० के० ढोक और जग्गूवकुलभूषण। इनमें श्रीमती लीलाराव दयाल ने २२ नाटक लिखे हैं और श्रीश्रीजीव न्यायतीर्थ ने २१। ये सभी के सभी अभिनीत और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री जग्गूवकुलभूषण ने १४ नाटक लिखे हैं पर सिवाय कुछेक के शेष अप्रकाशित ही हैं। श्री शङ्करलाल माहेश्वर ने ८, श्रीयतीन्द्रविमल चौधुरी ने १० और श्री वाई० महालिङ्ग शास्त्री ने ६ नाटक लिखे हैं। शेष ने (सिवाय अम्बिकादत्त व्यास के, जिनका एक नाटक सामवतम् ही उपलब्ध है) तीन-तीन चार-चार नाटक लिखे हैं। श्रीयतीन्द्रविमल चौधुरी ने सिंचाई व्यवस्था (महिमय-भारतम्) और श्री एस० बी० वेलण्कर ने चीन के भारत पर आक्रमण (रणश्रीरङ्गः) जैसे आधुनिकतम विषयों पर नाटक लिख संस्कृत के नाट्य-साहित्य को समृद्ध किया है।

उपरिकृत विहङ्गमावलोकन से संस्कृत नाट्य-धारा की गतिशीलता का परिचय प्राप्त हो जाता है। यह गतिशीलता ही इसे आज के युग तक खींच लाई है और निस्सन्देह भविष्य तक भी खींच ले जायगी।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मध्यमव्यायोगः

कवि-परिचय

भास के नाटकों को ढूंढ़ निकालने का श्रेय स्वर्गीय महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री को है। उनका मत है कि उन्हें जो तेरह नाटक त्रावनकोर राज्य में प्राप्त हुए वे उन्हीं भास द्वारा लिखे गये हैं जिनका उल्लेख कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में किया है। इनके समय का निर्धारण करते हुए शास्त्री जी ने इन्हें अत्यन्त प्राचीन मानने का प्रयास किया है क्योंकि इनकी भाषा में अनेक प्रयोग अपाणिनीय हैं। इनके नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायण का एक पद्य कौटिल्यार्थशास्त्र में भी मिलता है। दूसरी ओर इनके नाटकों में प्रयुक्त शाक्य श्रमणक शब्द बौद्ध भिक्षुओं का संकेत करता है। इसी प्रकार अजातशत्रु के उत्तराधिकारी महाराज दर्शक (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व) का इनमें उल्लेख है। अतः भास का समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से पहले नहीं हो सकता। कलापक्ष की दृष्टि से भी इनकी प्राकृत कालिदास की प्राकृत से मिलती-जुलती है। कालिदास के नाटकों की रचना सम्भवतः प्रथम शताब्दी में हुई। अतः भास के समय के लिए प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

विदेशी विद्वान् श्री कीथ के अनुसार भास के भरत-वाक्यों में राज्य से वञ्चित होने वाले किसी राजा का उल्लेख है जो सम्भवतः क्षत्रप रुद्रसिंह था। इसका राज्यकाल १८१–१८८ तथा १९१ ई०–१९६ ई० था। भास ने सम्भवतः राजसिंह शब्द से इसका ही उल्लेख किया। अतः कीथ के अनुसार इनका समय ३०० ई० के निकट रहा होगा। अन्य विद्वानों के अनुसार भास ने भरत-वाक्यों में उस राजा का उल्लेख किया होगा जो सम्भवतः कण्वों के राजा नारायण हैं। कण्वों का समय

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

७५ ई० पू० है अतः भास का समय, प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध ही उचित प्रतीत होता है।

भास के तेरह नाटकों में कुछ नाटक महाभारत पर, कुछ रामायण पर और कुछ कवि-कल्पना अथवा कथा-साहित्य पर आश्रित हैं—

(१) महाभारत पर आश्रित—ऊरुभंग, मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, बालचरित, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच और कर्णभार।

(२) रामायण पर आश्रित—अभिषेक और प्रतिमा।

(३) कवि-कल्पना या कथा-साहित्य पर आश्रित—अविमारक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त और चारुदत्त।

भास के इन तीनों श्रेणियों के नाटकों में साहित्य-कला के पृथक् रूप से दर्शन होते हैं। प्रथम श्रेणी के नाटकों की अलौकिकता में मानव जीवन के यथार्थ तत्त्व, शुभ-अशुभ पक्ष एवं ऊँच और नीच का चित्रण है। प्रत्येक पात्र की अपनी व्यक्तिगत सत्ता है जो वास्तविकता को आदर्श में परिणत करती है। यथार्थ और आदर्श ये दोनों पक्ष उनकी कला को चरमोद्देश्य की ओर अग्रसर करते हैं।

इनकी कला में कुछ अपरिष्कृत बातें भी हैं। जैसे कुछ पात्र रंगमंच से निकल कर तत्क्षण लौट आते हैं और पर्याप्त समय की घटनाओं को शीघ्रता में वर्णित कर देते हैं। कहीं इतनी तीव्रता होती है कि पात्र स्वयं भी उसके लिए अपने-आपको तैयार नहीं पाता। जादू और अतिमानुषी शक्तियों के प्रयोग से भी अनेक स्थानों पर अस्वाभाविकता आ गई है।

वीरगाथा के प्रभाव के कारण भास की शैली में सरलता एवं विशदता है एवञ्च लम्बे समासों का अभाव है। गद्य उच्चकोटि का है। उसमें सरलता, स्वाभाविकता एवं अलंकारों का यथोचित प्रयोग है। भास संवाद-रचना में भी पूर्णतया प्रवीण हैं। सामान्यतः इनकी भाषा शुद्ध संस्कृत है, परन्तु जैसे ऊपर कहा गया है, कहीं कहीं अपाणिनीय प्रयोगों के दर्शन भी हो जाते हैं।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भास का प्रभाव उत्तरकालीन कवियों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जैसे शूद्रक के मृच्छकटिक एवं भास के चारुदत्त में कथावस्तु, भाव, भाषा, वर्णन और क्रम तक में समानता है। भवभूति के उत्तररामचरित के दूसरे अंक में आत्रेयी के कथन पर स्वप्ननाटक के ब्रह्मचारी के वर्णन की गहरी छाप है। कालिदास ने तो भास को अपना आदर्श माना ही है। प्रतिमा एवं स्वप्ननाटक के उत्तम, रोचक और आकर्षक तत्त्व अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में पाये जाते हैं।

कथानक

घटोत्कच एक ब्राह्मण-परिवार का पीछा करता हुआ आता है। वह अपनी माता हिडिम्बा के व्रत का पारायण करने के लिए एक मनुष्य को पकड़ने आया है। ब्राह्मण के कहने पर वह उसके परिवार के एक सदस्य के बदले में सारे परिवार को छोड़ने को राज़ी हो जाता है।

पिता के लिए ज्येष्ठ के एवञ्च माता के लिए कनिष्ठ के सर्वाधिक प्रिय होने के कारण बीच के पुत्र मध्यम पर ही घटोत्कच की माता की बुभुक्षा मिटाने का भार आ पड़ता है। पर घटोत्कच के संग प्रस्थान करने से पूर्व वह पास के जलाशय से जल पीकर प्यास बुझाना चाहता है। लौटने में उसे विलम्ब हो जाता है। घटोत्कच उसे मध्यम ! मध्यम ! कह कर आवाज़ देता है। इस आवाज़ को सुनकर पाण्डवों में मध्यम भीम वहाँ आ जाते हैं और ब्राह्मण-परिवार पर कृपा कर ब्राह्मण-कुमार के स्थान पर स्वयं चलने को तैयार हो जाते हैं। वे घटोत्कच से कहते हैं कि यदि उसमें शक्ति है तो उन्हें बलपूर्वक ले जाय। घटोत्कच इसमें असफल रहता है। तब भीम स्वेच्छानुसार उसके साथ चल देते हैं। घर पहुँचने पर घटोत्कच की माता भीम को पहचान लेती है। घटोत्कच को बताती है कि वह उसका पिता है। पिता-पुत्र तथा पत्नी का यह आकस्मिक मिलन अपार आनन्द की सृष्टि करता है और यहीं व्यायोग की परिसमाप्ति हो जाती है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

[ततः प्रविशति सुतत्रयकलत्रपरिवृतो ब्राह्मणः पृष्ठतो घटोत्कचश्च]

ब्राह्मणः—भोः ! को नु खल्वेषः ?

तरुणरविकरप्रकीर्णकेशो, भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
सतडिदिव घनः सकण्ठसूत्रो, युगनिधने प्रतिमाकृतिर्हरस्य ।।१।।

ब्राह्मणी—आर्य ! क एषोऽस्मान् सन्तापयति ?

घटोत्कचः—भो ब्राह्मण ! तिष्ठ तिष्ठ । न गन्तव्यं न गन्तव्यम् ।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यम् । पुत्रकाः ! न भेतव्यम् । सविमर्शा ह्यस्य वाणी ।

घटोत्कचः—भोः ! कष्टम् ।

जानामि सर्वत्र सदा च नाम
द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् ।
अकार्यमेतच्च मयाद्य कार्यं
मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम् ।।२।।

वृद्धः—ब्राह्मणि ! किं न स्मरसि तत्रभवता जलक्लिन्नेन मुनिनोक्तम्—अनपेतराक्षसमिदं वनमप्रमादेन गन्तव्यमिति । तदेवोत्पन्नं भयम् ।

ब्राह्मणी—किमिदानीमार्यो मध्यस्थवर्ण इव दृश्यते ?

वृद्धः—किं करिष्यामि मन्दभाग्यः ।

ब्राह्मणी—ननु विक्रोशामः ।

प्रथमः—भवति ! कस्य वयं विक्रोशामः ।

इदं हि शून्यं तिमिरोत्करप्रभै-
र्नगप्रकारैरवरुद्धदिक्पथम् ।
खगैर्मृगैश्चापि समाकुलान्तरं
वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम् ।।३।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्यम्, न भेतव्यम् । मनस्विजननिवास-
योग्यमिति श्रुत्वा विगत इव मे संत्रासः । शङ्के नातिदूरेण
पाण्डवाश्रमेण भवितव्यम् । पाण्डवास्तु,

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च
दीनेषु पक्षपतिताः कृतसाहसाश्च ।
एवंविधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां
दण्डं यथार्हमिह धारयितुं समर्थाः ॥४॥

प्रथमः—भोस्तात ! न तत्र पाण्डवा इति मन्ये ।

वृद्धः—कथं त्वं जानीषे ?

प्रथमः—श्रुतं मया तस्मादागच्छता केनचिद् ब्राह्मणेन शतकुम्भ
नाम यज्ञमनुभवितुं महर्षेर्धौम्यस्याश्रमं गता इति ।

वृद्धः—हन्त, हताः स्मः ।

प्रथमः—तात ! न तु सर्वं एव । आश्रमपरिपालनार्थमिह स्था-
पितः किल मध्यमः ।

वृद्धः—यद्येवं सन्निहिताः सर्वे पाण्डवाः ।

प्रथमः—स चाप्यस्यां वेलायां व्यायामपरिचयार्थं विप्रकृष्ट-
देशस्थ इति श्रूयते ।

वृद्धः—हन्त, निराशाः स्मः । भवतु पुत्र! व्यपाश्रयिष्ये तावदेनम् ।

प्रथमः—अलमलं परिश्रमेण ।

वृद्धः—पुत्र ! निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना । भवतु पश्याम-
स्तावत् । भो भोः पुरुष ! अस्त्यस्माकं मोक्षः ?

घटोत्कचः—मोक्षोऽस्ति समयतः ।

वृद्धः—कः समयः ?

घटोत्कचः—अस्ति मे तत्रभवती जननी । तयाहमाज्ञप्तः ।
पुत्र ! ममोपवास-निसर्गार्थमस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मा-
नुषः प्रतिगृह्यानेतव्य इति । ततो मयासादितो भवान् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि ।
बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥५॥

वृद्धः—हं भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मणः ?

ब्राह्मणः श्रुतवान्वृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम् ।
पुरुषादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ॥६॥

घटोत्कचः—

यद्यर्थितो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रमेकं न मुञ्चसि ।
सकुटुम्बः क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ॥७॥

वृद्धः—एष एव मे निश्चयः ।

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम् ।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम् ॥८॥

ब्राह्मणी—आर्य ! मा मैवम् । पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम । गृहीतफलेनैतेन शरीरेणार्यं कुलं च रक्षितुमिच्छामि ।

घटोत्कचः—भवति ! न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या ।

वृद्धः—अनुगमिष्यामि भवन्तम् ।

घटोत्कचः— आः, वृद्धस्त्वमपसर ।

प्रथमः—भोस्तात ! ब्रवीमि खलु तावत्किंचित् ।

वृद्धः—ब्रूहि ब्रूहि शीघ्रम् ।

प्रथमः—

मम प्राणैर्गुरुप्राणानिच्छामि परिरक्षितुम् ।
रक्षणार्थं कुलस्यास्य मोक्तुमर्हति मां भवान् ॥९॥

द्वितीयः—आर्य ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठः श्रेष्ठः कुले लोके पितृणां च सुसंप्रियः ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन् ॥१०॥

तृतीयः—आर्यौ ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।
ततोऽहं कर्तुमर्हामि गुरूणां प्राणरक्षणम् ॥११॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रथमः—वत्स ! मा मैवम् ।

आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरूणां प्राणरक्षणात् ।।१२।।

वृद्धः—ज्येष्ठमिष्टतमं न शक्नोमि परित्यक्तुम् ।

ब्राह्मणी—यथार्यो ज्येष्ठमिच्छति तथाहमपि कनिष्ठमिच्छामि ।

द्वितीयः—पित्रोरनिष्टः कस्येदानीं प्रियः ?

घटोत्कचः—अहं प्रीतोऽस्मि । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—

धन्योऽस्मि यद् गुरुप्राणाः स्वैः प्राणैः परिरक्षिताः ।
बन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः ।। १३।।

घटोत्कचः—अहो स्वजनवात्सल्यमस्य ब्राह्मणवटोः ।

द्वितीयः—भोस्तात ! अभिवादये ।

वृद्धः—एह्येहि पुत्र !

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल ।
अकृतात्मदुरावापं ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ।।१४।।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । अम्ब ! अभिवादये ।

ब्राह्मणी—जात ! चिरं जीव ।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

प्रथमः—एह्येहि वत्स !

परिष्वजस्व गाढं मां परिष्वक्तः शुभैर्गुणैः ।
कीर्त्या तव परिष्वक्ता भविष्यति वसुन्धरा ।। १५।।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

तृतीयः—आर्य ! अभिवादये ।

द्वितीयः—स्वस्ति ।

तृतीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

द्वितीयः—भोः पुरुष ! किंचिद् ब्रवीमि ।

घटोत्कचः—ब्रूहि ब्रूहि शीघ्रम् ।

द्वितीयः—एतस्मिन्वनान्तरे जलाशय इव दृश्यते । तत्र मे प्रकल्पितपरलोकस्य पिपासा-प्रतीकारं करिष्यामि ।

घटोत्कचः—दृढव्यवसायिन् ! गम्यताम् । अतिक्रामति मातुराहारकालः । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—भोस्तात ! एष गच्छामि । (निष्क्रान्तः)

वृद्धः—हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।

यस्मिन्नश्शृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वंशपर्वतः ।
स मध्यश्शृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥१६॥

हा पुत्रक! कथं गत एव ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणबटुः । अतिक्रामति मातुराहारकालः । किंनु खलु करिष्ये ? भवतु दृष्टम् । भो ब्राह्मण ! आहूयतां तव पुत्रः ।

वृद्धः—आः, अतिराक्षसं खलु ते वचनम् ।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति । मर्षयतु भवान्मर्षयतु । अयं मे प्रकृतिदोषः । अथ किंनामा तव पुत्रः ?

वृद्धः—एतदपि न शक्यं श्रोतुम् ।

घटोत्कचः—युक्तं भोः ! ब्राह्मणकुमार ! किंनामा ते भ्राता ?

प्रथमः—तपस्वी मध्यमः ।

घटोत्कचः—मध्यम इति सदृशमस्य । अहमेवाह्वयामि । भो मध्यम ! मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

[ततः प्रविशति भीमसेनः]

भीमः—कस्यायं स्वरः ?

खगशतविरुते विरौति तारं
द्रुमगहने दृढसंकटे वनेऽस्मिन् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं
बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य ।।१७।।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणबटुः । अतिक्रामति मातुराहारकालः । किं नु खलु करिष्ये ? भवतु दृष्टम् । उच्चैः शब्दापयामि । भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

भीमः—भोः ! को नु खल्वेतस्मिन् वनान्तरे मम व्यायामविघ्नमुत्पाद्य मध्यम इति मां शब्दापयति ? भवतु पश्यामस्तावत् ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणबटुः । उच्चैः शब्दापयामि । भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ ।

भीमः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—न खल्वयं ब्राह्मणबटुः ।
भो मध्यम ! त्वां खल्वहं शब्दापयामि ।

भीमः—अतः खल्वहं प्राप्तः ।

घटोत्कचः—किं भवानपि मध्यमः ?

भीमः—न तावदपरः ।
मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः ।
मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र! भ्रातॄणामपि मध्यमः ।।१८।।

घटोत्कचः—भवितव्यम् ।

भीमः—अपि च,
मध्यमः पञ्चभूतानां पार्थिवानां च मध्यमः ।
भये च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यमः ।।१९।।

वृद्धः—
मध्यमस्त्वित संप्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यमः ।
अस्मान्मोक्तुमिहायातो दर्पान्मृत्योरिवोत्थितः ।।२०।।

[प्रविश्य]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मध्यमः—

अस्यामाचम्य पद्मिन्यां परलोकेषु दुर्लभम् ।
आत्मनैवात्मनो दत्तं पद्मपत्रोज्ज्वलं जलम् ॥२१॥

(उपगम्य) भोः पुरुष ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—भवानिदानीं खल्वस्ति मध्यमः । मध्यम ! इत इतः ।

वृद्धः—(भीमसेनमुपगम्य) भो मध्यम ! परित्रायस्व ब्राह्मण-कुलम् ।

भीमः—न भेतव्यम्, न भेतव्यम् । मध्यमोऽहमभिवादये ।

वृद्धः—वायुरिव दीर्घायुर्भव ।

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मि । कुतो भयमार्यस्य ?

वृद्धः—श्रूयताम् । अहं खलु कुरुराजेन युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्वे कुरुजाङ्गले यूपग्रामवास्तव्यो माठरसगोत्रश्च कल्पशाखाध्वर्युः केशवदासो नाम ब्राह्मणः । तस्य ममोत्तरस्यां दिशि उद्यामकग्रामवासी मातुलः कौशिकसगोत्रो यज्ञबन्धुर्नामास्ति । तस्य पुत्रोपनयनार्थं सकलत्रोऽस्मि प्रस्थितः ।

भीमः—अरिष्टोऽस्तु पन्थाः । ततस्ततः ।

वृद्धः—ततो मामेष हि—

सजलजलदगात्रः पद्मपत्रायताक्षो
मृगपतिगतिलीलो राक्षसः प्रोग्रदंष्ट्रः ।
जगति विगतशङ्कस्त्वद्विधानां समक्षं
ससुतपरिजनं भो ! हन्तुकामोऽभ्युपैति ॥२२॥

भीमः—एवम् । अनेन ब्राह्मणजनस्य मार्गविघ्नः कृतः । भवतु निग्रहीष्यामि तावदेनम् । भोः पुरुष ! तिष्ठ तिष्ठ ।

घटोत्कचः—एष स्थितोऽस्मि ।

भीमः—किमर्थं ब्राह्मणजनमपराध्यसि ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य पत्नीकान्तप्रभस्य च ।
वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थितः ॥२३॥

घटोत्कचः—अथ किम् । राहुरेव ।

भीमः—आः,

निवृत्तव्यवहारोऽयं सदारस्तनयैः सह ।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ॥२४॥

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भीमः—(आत्मगतम्) भोः ! कस्य पुत्रेणानेन भवितव्यम् ?

भ्रातृणां मम सर्वेषां कोऽयं भोः ! गुणतस्करः ।
दृष्ट्वैतद्बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥२५॥

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता ।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया ॥२६॥

भीमः—(आत्मगतम्) कथं मातुराज्ञेति । अहो गुरुशुश्रूषुः खल्वयं तपस्वी ।

माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम् ।
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य वयमेतां दशां गताः ॥२७॥

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! प्रष्टव्यं खलु तावदस्ति ।

घटोत्कचः—ब्रूहि ब्रूहि शीघ्रम् ।

भीमः—का नाम भवतो माता ?

घटोत्कचः—श्रूयताम्, हिडिम्बा नाम राक्षसी—

कौरव्यकुलदीपेन पाण्डवेन महात्मना ।
सनाथा या महाभागा पूर्णेन द्यौरिवेन्दुना ॥२८॥

भीमः—(सहर्षमात्मगतम्) एवं, हिडिम्बायाः पुत्रोऽयम् । सदृशो ह्यस्य गर्वः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभिः सदृश बहु ।
प्रजासु वीतकारुण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम् ।।२६।।

(प्रकाशम्) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

भीमः—भो ब्राह्मण ! गृह्यतां तव पुत्रः । वयमेनमनुगमिष्यामः ।

द्वितीयः—मा मा भवानेवम् ।

त्यक्ताः प्रागेव मे प्राणाः गुरुप्राणेष्वपेक्षया ।
युवा रूपगुणोपेतो भवांस्तिष्ठतु भूतले ।।३०।।

भीमः—आर्य ! मा मैवम् । क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम् । पूज्यतमाः खलु ब्राह्मणाः । तस्माच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिमातुमिच्छामि ।

घटोत्कचः—एवं, क्षत्रियोऽयं, तेनास्य दर्पः । भवतु, इममेव हत्वा नेष्यामि । अथ केनायं वारितः ?

भीमः—मया ।

घटोत्कचः—किं त्वया ?

भीमः—अथ किम् ।

घटोत्कचः—तेन हि भवानेवागच्छतु ।

भीमः—एवमतिबलवीर्यान्नानुगच्छामि । यदि ते शक्तिरस्ति बलात्कारेण मां नय ।

घटोत्कचः—किं मां प्रत्यभिजानीते भवान् ।

भीमः—मत्पुत्र इति जाने ।

घटोत्कचः—कथं कथं तव पुत्रोऽहम् ?

भीमः—कथं रुष्यति । मर्षयतु भवान् । सर्वाः प्रजाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते । अत एवं मयाभिहितम् ।

घटोत्कचः—भीतानामायुधं गृहीतम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भीमः—
शपामि सत्येन भयं न जाने, ज्ञातुं तदिच्छामि भवत्समीपे।
किं रूपमेतद्वद भद्र ! तस्य, गुणागुणज्ञः सदृशं प्रयत्स्ये ॥३१॥
घटोत्कचः—एष ते भयमुपदिशामि। गृह्यतामायुधम् ।
भीमः—आयुधमिति, गृहीतमेतत् ।
घटोत्कचः—कथमिव ?
भीमः—काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः ।
अयं तु दक्षिणो बाहुरायुधं सहजं मम ॥३२॥
घटोत्कचः—इदमुपपन्नं पितुर्मे भीमसेनस्य ।
भीमः—अथ कोऽयं भीमो नाम ?
विश्वकर्ता शिवः कृष्णः शक्रः शक्तिधरो यमः ।
एतेषु कथ्यतां भद्र ! केन ते सदृशः पिता ? ॥३३॥
घटोत्कचः—सर्वैः ।
भीमः—धिगनृतमेतत् ।
घटोत्कचः—कथं कथमनृतमित्याह। क्षिपसि मे गुरुम्। भवत्विमं स्थूलं वृक्षमुत्पाटच प्रहरामि। (उत्पाट्य प्रहरति) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किं खलु करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् ।एतद् गिरिकूटमुत्पाटच प्रहरामि।
शैलकूटं मयाक्षिप्तं प्राणानादाय यास्यति ।
भीमः—रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने ॥
घटोत्कचः—(प्रहृत्य) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् ! किं नु खलु करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् ।
नन्वहं भीमसेनस्य पुत्रः पौत्रो नभस्वतः ।
तिष्ठेदानीं सुसन्नद्धो नियुद्धे नास्ति मत्समः ॥३४॥

[इत्युभौ नियुद्धं कुरुतः]

घटोत्कचः—(भीमसेनं बद्ध्वा)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

व्रजसि कथमिह त्वं वीर्यमुल्लङ्घ्य बाह्वो-
र्गज इव दृढपाशैः पीडितो मद्भुजाभ्याम् ।

भीमः—(आत्मगतम्) कथं गृहीतोऽस्म्यनेन । भोः सुयोधन ! वर्धते ते शत्रुपक्षः, कृतरक्षो भव । (प्रकाशम्) भोः पुरुष ! अवहितो भव ।

घटोत्कचः—अवहितोऽस्मि ।

भीमः—(नियुद्धबन्धमवधूय)

व्यपनय बलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर !
नहि मम परिखेदो विद्यते बाहुयुद्धे ।।३५।।

घटोत्कचः—कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम् ! किं नु खलु करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् । अस्ति मातृप्रसादलब्धो मायापाशः । तेन बद्ध्वैनं नेष्यामि । कुतः खल्वापः ? भो गिरे ! आपस्तावत् । हन्त, स्रवति । (आचम्य मन्त्रं जपति) भोः पुरुष !

मायापाशेन बद्धस्त्वं विवशोऽनुगमिष्यसि ।
राजसे रज्जुभिर्बद्धः शक्रध्वज इवोत्सवे ।।३६।।

(इति मायया बध्नाति)

भीमः—कथं मायापाशेन बद्धोऽस्मि ! किमिदानीं करिष्ये ? भवतु दृष्टम् । अस्ति मे महेश्वरप्रसादाल्लब्धो मायापाशमोक्षो मन्त्रः । तं जपामि । कुतः खल्वापः ? भो ब्राह्मणकुमार ! आनय कमण्डलुगता आपः ।

वृद्धः—इमा आपः ।

[भीमः आदायाचम्य मन्त्रं जप्त्वा मायामपनयति]

घटोत्कचः—अये पतितः पाशः । किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् । भोः पुरुष ! पूर्वसमयं स्मर ।

भीमः—समयमिति । एष स्मरामि । गच्छाग्रतः । (उभौ परिक्रामतः)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वृद्धः—पुत्रकाः ! किं कुर्मः । अयं गच्छति वृकोदरः ।
घटोत्कचः—इह तिष्ठ । त्वदागमनमम्बायै निवेदयामि ।
भीमः—बाढम् । गच्छ ।
घटोत्कचः—(उपसृत्य) अम्ब ! अयमभिवादये । चिराभिलषितो भवत्या आहारार्थमानीतो मानुषः ।

[प्रविश्य]

हिडिम्बा—जात ! कीदृशो मानुष आनीतः ?
घटोत्कचः—भवति ! रूपमात्रेण मानुषः, न वीर्येण ।
हिडिम्बा—किं ब्राह्मणः ?
घटोत्कचः—न ब्राह्मणः ।
हिडिम्बा—अथवा स्थविरः ?
घटोत्कचः—न वृद्धः ।
हिडिम्बा —किं बालः ?
घटोत्कचः—न बालः ।
हिडिम्बा—यद्येवं पश्यामि तावदेनम् । (उभौ परिक्रामतः)
हिडिम्बा—किमेष मानुष आनीतः ?
घटोत्कचः—अम्ब ! कोऽयम् ?
हिडिम्बा—उन्मत्तक ! दैवतं खल्वस्माकम् ।
घटोत्कचः—आः कस्य दैवतम् ?
हिडिम्बा—तव च, मम च ।
घटोत्कचः—कः प्रत्ययः ।
हिडिम्बा—अयं प्रत्ययः । जयत्वार्यपुत्रः ।
भीमः—(विलोक्य) का पुनरियम् ? अये देवी हिडिम्बा !

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने ।
जातकारुण्यया देवि ! सन्तापो नाशितस्त्वया ॥३७॥

हिडिम्बे ! किमिदम् ?
हिडिम्बा—(कर्णे) आर्यपुत्र ! ईदृशमिव ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

भीमः—जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण ।
हिडिम्बा—उन्मत्तक ! अभिवादय पितरम् ।
घटोत्कचः—भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यद्भवान्नाभिवादितः ।
अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३८॥

अहं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निर्घटोत्कचोऽभिवादये । पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि ।

भीमः—एह्येहि पुत्र ! व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव (इति परिष्वज्य) अयं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः । पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि। पुत्र ! अतिबलपराक्रमो भव ।
घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।
वृद्धः—एवं भीमसेनपुत्रोऽयं घटोत्कचः ।
भीमः—पुत्र ! अभिवादयात्र भवन्तं केशवदासम् ।
घटोत्कचः—भगवन्नभिवादये ।
वृद्धः—पितृसदृशगुणकीर्तिर्भव ।
घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।
वृद्धः—भो वृकोदर ! रक्षितमस्मत्कुलं, स्वकुलमुद्धृतं च । गच्छामस्तावत् ।
भीमः—अनुग्रहात्तु भवतः सर्वमासीदिदं शुभम् ।

आश्रमोऽदूरतोऽस्माकं तत्र विश्रम्य गम्यताम् ॥३९॥

वृद्धः—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन । तस्माद् गच्छामस्तावत् ।
भीमः—गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दर्शनाय ।
वृद्धः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (सपुत्रत्रयकलत्रो निष्क्रान्तः केशवदासः)
भीमः—हिडिम्बे ! इतस्तावत् । वत्स घटोत्कच ! इतस्तावत् । तत्रभवन्तं केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि सम्भावयिष्यामः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

यथा नदीनां प्रभवः समुद्रो
यथाहुतीनां प्रभवो हुताशः ।
यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि
तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः ॥४०॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे]

प्रश्नाः

१. साहित्यशास्त्रदृष्ट्या व्यायोगस्य लक्षणं ब्रूत ।

२. मध्यमव्यायोगस्य कथानकं संक्षेपेण स्वभाषया लिखत ।

३. भीमघटोत्कचयोर्युद्धं किमर्थं प्रवृत्तम् ?

४. निम्ननिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरःसरं व्याख्येयानि—
(क) निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना ।
(ख) वन्धुस्नेहाद्धि महतः कायस्नेहस्तु दुर्लभः ।
(ग) सर्वाः प्रजाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते ।
(घ) उन्मत्तक ! दैवतं खल्वस्माकम् ।
(ङ) पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि ।
(च) कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन ।

५. निम्ननिर्दिष्टानां शब्दानामर्थं हिन्दीभाषया लिखत—
मध्यस्थवर्णः, निर्वृतिम्, विनिमाय, दृष्टसारः, स्थविरः ।

६. निम्नलिखितेषु पदेषु समासनिर्देशपुरःसरं विग्रहः प्रदर्श्यताम्—
सतडित्, राक्षसाग्नौ, त्रिश्शृङ्गः, वालशौण्डीर्यम् ।

७. 'माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम्' इति विषयमवलम्ब्य संस्कृतभाषया नातिदीर्घः प्रबन्धो विरच्यताम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

८. महाकवि-भासेन कति रूपकाणि प्रणीतानि ?
९. व्यायोगस्यास्य मध्यमव्यायोग इति संज्ञा कुतः ?
१०. मध्यमव्यायोगानुसारेण घटोत्कच-चरित्रं चित्रयत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

विक्रमोर्वशीयम्

कवि-परिचय

कवि-कुल-चूड़ामणि कालिदास के जीवन तथा जन्म-तिथि के विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं हैं। इस अनिर्णय के कारण इस प्रकार हैं— (१) कालिदास ने निजी व्यक्तित्व पर कोई प्रकाश नहीं डाला। (२) इनके नाम के साथ अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हो गईं। (३) बाद में इनका 'कालिदास' नाम एक उपाधि बन कर रह गया। इनके जीवन सम्बन्धी प्रचलित धारणाएँ इस प्रकार हैं—(क) यह पहले मूर्ख थे परन्तु काली के प्रसाद से विद्वान् बने अतः कालिदास कहलाये। (ख) यह विक्रम की सभा के नवरत्नों में से एक थे। (ग) राजा भोज के दरबारी कवि थे। (घ) लङ्का के राजा धातुसेन या कुमारदास के मित्र थे। (ङ) सेतु-वन्ध महाकाव्य के रचयिता काश्मीरराज प्रवरसेन के मित्र से अभिन्न थे। इसी प्रकार इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विवाद हैं। कुछ इन्हें काश्मीरी, कुछ वंगाली और कुछ मालवनिवासी मानते हैं।

इसी प्रकार जन्म-काल के विषय में भी अनेक मत हैं। कुछ विद्वान् इन्हें छठी शताब्दी का मानते हैं और कुछ चतुर्थ शताब्दी का। कुछेक इनका काल प्रथम शताब्दी ईसापूर्व मानते हैं जो कि इन सभी मतों में सर्वाधिक तर्कसम्मत जँचता है।

(१) छठी शताब्दी ई० का मत

फर्ग्युसन के अनुसार उज्जयिनी के महाराज हर्ष विक्रमादित्य ने ५४४ ई० में शकों को परास्त कर, विजय के उपलक्ष में ५७ ई० पूर्व एक विक्रम संवत् चलाया तथा कालिदास द्वारा वर्णित शक, यवन पह्लव आदि जाति वाले हूणों ने ५०० ई० के लगभग भारत पर

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

आक्रमण किया। अतः कालिदास का समय ५०० ई० के पश्चात् माना जाय। इसके विरुद्ध आपत्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. कालिदास ने रघुवंश में हूणों को विजेता न बताकर, रघु द्वारा पराजित भारत की सीमा से बाहर के वासी बताया है। चीन तथा मध्य एशिया के इतिहास के अनुसार हूण पामीर के पूर्वोत्तर में प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० पूर्व में आये।

२. ४७३ ई० पूर्व में रचित वत्सभट्टि की मन्दसौर-प्रशस्ति पर कालिदास के ऋतुसंहार एवं मेघदूत की छाप स्पष्ट है।

(२) गुप्तकालीन मत

कीथ तथा मैकडॉनल आदि यूरोपीय विद्वानों के अनुसार सर्वप्रथम गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। यह भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। अतः इन्हीं के आश्रय में कवि ने अपनी कविता का विकास किया। उसने कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर कुमारसंभव नामक महाकाव्य की रचना की। इन्होंने ही पूर्वप्रचलित मालव संवत् को बदल शकों की विजय के उपलक्ष्य में ईसा से ५७ वर्ष पूर्व अपने नये संवत् को चलाया। इस मत के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

१. इधर इस धारणा को ग़लत बताना सम्भव नहीं कि चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर कुमारसंभव की रचना हुई क्योंकि कालिदास ने अनेक स्थानों पर कुमार शब्द का प्रयोग किया है।

२. कुछ आलोचकों के अनुसार रघु की दिग्विजय-यात्रा के रूप में समुद्रगुप्त की विजय-यात्राओं का वर्णन है।

३. मालविकाग्निमित्र में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन कुछ विद्वानों के अनुसार सम्राट् समुद्रगुप्त के महायज्ञ का वर्णन है। जबकि शुंगवंश के प्रवर्त्तक ने यह विख्यात यज्ञ सम्पन्न कराया।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

४. सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि किसी भी गुप्त सम्राट् का नाम विक्रमादित्य नहीं था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी इसे उपाधि रूप में ग्रहण किया। अतः इस नाम से लोकप्रसिद्ध सम्राट् इनसे पूर्व भी रहा होगा जो महाकवि का आश्रयदाता रहा।

इस पक्ष के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं।

१. महापराक्रमी राजा विक्रमादित्य ने पूर्व-प्रचलित मालव संवत् को अपने व्यक्तित्व का ह्रास करते हुए अपने नाम से क्यों चलाया।

२. अपने पितामह द्वारा प्रचलित गुप्त संवत् का पौत्र ने क्यों वहिष्कार किया। स्कन्दगुप्त ने इसी गुप्त संवत् का उल्लेख किया है। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा नये संवत् का चलाना निराधार ही है।

(३) प्रथम शताब्दी ई० पूर्व का मत

महाराज विक्रमादित्य द्वारा शकों पर विजय-प्राप्ति के उपलक्ष्य में ५७ वर्ष ई० पूर्व संवत् चलाने का मत भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित रहा है। इसी संवत् का आज भी ज्योतिष एवं धार्मिक कार्यों में प्रयोग होता है। प्रथम शताब्दी ई० पूर्व गुणाढ्य की वृहत्कथा के आधार पर रचे कथासरित्सागर नामक ग्रंथ में महाराज विक्रमादित्य का उल्लेख है। इन परमारवंशीय विक्रमादित्य के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। ये काव्य-मर्मज्ञ कवियों और कलाकारों को सम्मान देते थे। कालिदास के ग्रंथों में प्रतिपादित शैव सिद्धांतों के आधार पर उनका वैष्णव गुप्त नरेशों की अपेक्षा शैव सम्राट् विक्रमादित्य का आश्रित होना ही उचित जान पड़ता है। इस मत की पुष्टि अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी होती है। कालिदास ने इनके नाम को अमर करने के लिए विक्रमोर्वशीय की रचना की तथा अनेक स्थानों पर इन्द्र के पर्यायवाची महेन्द्र के रूप में इनके पिता महेन्द्र विक्रमादित्य का

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

संकेत किया। यह ग्रंथ वृद्ध नरेश के अवकाश-ग्रहण तथा राजकुमार की राज्यासन-प्राप्ति पर अभिनीत हुआ होगा।

प्रयाग के निकट भीटा में उपलब्ध पदक में एक चित्र है जिसमें हरिण का पीछा करते हुए एक रथारूढ़ राजा का चित्र है। यह वर्णन केवल अभिज्ञानशाकुन्तल में मिलता है। भीटा का यह चित्र शुंगकालीन है। शुंगवंश का समय ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर प्रथम शताब्दी ई० पूर्व है। अतः पदक के चित्र का भी यही समय हुआ। सम्भवतः पदक के चित्र की प्रेरणा अभिज्ञान शाकुन्तल से ली गई होगी। इससे महाकवि का समय भी प्रथम शताब्दी ई० पूर्व सिद्ध होता है।

यूरोपीय विद्वानों के अनुसार गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय से पूर्व सर्वप्रथम विक्रमादित्य उपाधिधारी कोई विक्रमादित्य नहीं हुआ परन्तु इतिहास के मूक होते हुए भी इतनी बड़ी जनश्रुति की अवहेलना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार पूर्ण गवेषणा के अभाव में भीटा के पदक को भी यूरोपीय विद्वान् महाभारत की कथा पर आधारित नहीं मान सकते। पूर्वोक्त युक्तियों के आधार पर महाकवि कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पूर्व मानना ही अधिक श्रेयस्कर है।

कालिदास जाति के ब्राह्मण एवं शिव के पुजारी थे। जीवन में वे आशा-उत्साह, सन्तोष-सुखोपभोग, प्रसन्नता-उदारता, कर्त्तव्यपरायणता, सामाजिक, जातीय एवं राष्ट्रीय नैतिक नियमों के प्रति आदर भाव, शिष्टाचार एवं सत्यता का सन्देश देते हैं। इनकी निरीक्षण-शक्ति अति सूक्ष्म है। इनका हृदय कोमलता, भक्ति और रसिकता से ओत-प्रोत है। ये प्रकृति के पुजारी हैं। इनके प्रकृति का वर्णन बहुत मर्मस्पर्शी है।

काव्यकार के रूप में इन्होंने ऋतुसंहार और मेघदूत (दो खण्डकाव्य) रघुवंश और कुमारसंभव (दो महाकाव्य) ग्रंथों की रचना की।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नाटककार के रूप में तीन नाटक रचे—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल।

कथानक

राजा पुरूरवा उर्वशी नाम की एक अप्सरा को केशी दैत्य के चंगुल से छुड़ाते हैं। इस पर उर्वशी उन्हें अपना हृदय समर्पित करती है। उधर राजा भी उस पर मुग्ध हैं। वे किसी न किसी तरह उसे प्राप्त करना चाहते हैं। उर्वशी राजा को लिखित सन्देश भेजकर प्रेमालाप करती है। अकस्मात् उर्वशी को अभिनय के लिए स्वर्ग जाना पड़ता है! पीछे से रानी उसका सन्देश पढ़ लेती है। उर्वशी स्वर्ग में अभिनय करते हुए पुरूरवा के प्रति प्रेम को नहीं छुपा सकती और लक्ष्मी के वेष में विष्णु के सामने पुरूरवा की ही बात करती है। भरत मुनि क्रुद्ध होकर उसे आजीवन पृथ्वीलोक में रहने का शाप देते हैं। इन्द्र बीच-बचाव करते हैं और पुरूरवा के शाप की अवधि पुत्र के दर्शन तक ही निश्चित की जाती है। पुरूरवा की पटरानी भी उर्वशी से विवाह करने के लिए राजा को अनुमति दे देती है। कुछ समय पश्चात् किसी कारणवश क्रुद्ध उर्वशी स्त्रियों के लिए निषिद्ध कुमारवन में चली जाती है और लता बन जाती है। राजा उसे ढूँढ़ता फिरता है परन्तु वह उसे नहीं मिलती। राजा एक अलौकिक मणि के प्रभाव से उसे फिर से उर्वशी के रूप में पाता है। एक गृध्र उस मणि को उठा ले जाता है। उर्वशी का पुत्र आयु (जिसका पुरूरवा को पता नहीं है) उस गृध्र को मार डालता है। एक तापसी उसे साथ लिये राज-दरबार में आती है। वह उसे उर्वशी को सौंपना चाहती है। उर्वशी आती है और आयु को देख स्नेहार्द्र हो जाती है। पुत्र-लाभ के कारण पति-पत्नी (पुरूरवा और उर्वशी) दोनों ही बहुत हर्षित होते हैं। पर वे पुत्र-दर्शन तक ही उर्वशी के भूलोक में रहने की शाप की अवधि के कारण वियोग की आशङ्का से चिन्तित हैं किन्तु तभी इन्द्र सन्देश भेज देते हैं— राक्षसों के वध में

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सहायक बन जाने से पुरूरवा और उर्वशी दम्पति के रूप में सदा के लिए रह सकते हैं।"

[पञ्चमाऽङ्कात्]

[नेपथ्ये]

हा धिक्! हा धिक्! दुकूलोत्तरच्छदे तालवृन्ताधारे निक्षिप्य नीयमानो मया भर्तुरभ्यन्तर-विलासिनी-मौलिरचनायोग्यो मणिरामिषशङ्किना गृध्रेण आक्षिप्तः।

विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) अत्याहितम्। परं बहुमतः खलु स वयस्यस्य संगमनीयो नाम चूडामणिः। अतः खलु असमाप्त-नेपथ्यः तत्रभवान् आसनाद् उत्थाय इत एव आगच्छति। यावदेनमुपसर्पामि।

[इति निष्क्रान्तः]

[ततः प्रविशति सावेगपरिजनो राजा]

राजा—

आत्मनो वधमाहर्ता क्वासौ विहगतस्करः।
येन तत्प्रथमं स्तेयं गोप्तुरेव गृहे कृतम् ॥१॥

किराती—एष एष खलु मुखकोटिलग्नहेमसूत्रेण मणिना आलिखन्निव आकाशं परिभ्रमति।

राजा—पश्याम्येनम्।

असौ मुखालम्बितहेमसूत्रं
बिभ्रन्मणिं मण्डलचारशीघ्रः।
अलातचक्रप्रतिमं विहङ्ग-
स्तद्रागरेखावलयं तनोति ॥२॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

किं नु खलु कर्त्तव्यम् ?

विदूषकः—(उपेत्य) अलमत्र घृणया। अपराधी शासनीयः।

राजा—सम्यगाह भवान्। धनुर्धनुस्तावत्।

यवनी—एषाऽऽनेष्यामि।

[निष्क्रान्ता धनुर्ग्राहिणी यवनी]

राजा—वयस्य न दृश्यते विहङ्गः।

विदूषकः—इतो दक्षिणान्तेन अपगतः शासनीयः कुणपभोजनः।

राजा—(परिवृत्य, अवलोक्य) दृष्ट इदानीम्।

प्रभापल्लवितेनासौ करोति मणिना खगः।
अशोकस्तबकेनेव दिङ्मुखस्यावतंसकम् ॥३॥

[प्रविश्य चापहस्ता यवनी]

यवनी—भर्तः ! एतद्धस्तावापसहितं शरासनम्।

राजा—किमिदानीं धनुषा। बाणपथमतीतः क्रव्यभोजनः।
तथा हि—

आभाति मणिविशेषः
दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः।
नक्तमिव लोहिताङ्गः
परुषघनच्छेदसंयुक्तः ॥४॥

(कञ्चुकिनं विलोक्य) लातव्य ! मद्वचनादुच्यतां नागरिकः सायं निवासवृक्षाश्रयी विचीयतां विहगदस्युरिति।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः।

[इति निष्क्रान्तः]

विदूषकः—उपविशतु भवान् सांप्रतम्। क्व गतो रत्न-कुम्भीरको भवतः शासनात् मोक्ष्यते।

राजा—(विदूषकेण सहोपविश्य)

रत्नमिति न मम तस्मिन्
मणौ प्रियत्वं विहङ्गमाक्षिप्ते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रियया तेनास्मि सखे
संगमनीयेन संगमितः ।।५।।

विदूषकः—ननु परिगतार्थोऽस्मि कृतो भवता ।

[ततः प्रविशति सशरं मणिमादाय कञ्चुकी]

कञ्चुकी—जयतु जयतु देवः ।

अनेन निर्भिन्नतनुः स वध्यो
बलेन ते मार्गणतां गतेन ।
प्राप्यापराधोचितमन्तरिक्षात्
समौलिरत्नः पतितः पतत्त्री ।।६।।

[सर्वे विस्मयं रूपयन्ति]

कञ्चुकी—अद्भिः प्रक्षालितो मणिः कस्मै प्रदीयताम् ?
राजा—किराति ! अग्निशुद्धमेनं कृत्वा पेटकं प्रवेशय ।
किराती—यद् भर्ता आज्ञापयति । (इति मणिं गृहीत्वा निष्क्रान्ता)
राजा—लातव्य ! अपि जानीते भवान् कस्यायं बाण इति ।
कञ्चुकी—नामाङ्कितो दृश्यते न तु मे वर्णविचारक्षमा दृष्टिः ।
राजा—तेन ह्युपनय शरम् ।

[तथा करोति । राजा नामाक्षराण्यनुवाच्य सापत्यतां रूपयति]

कञ्चुकी—यावन्नियोगशून्यं करोमि ।

[इति निष्क्रान्तः]

विदूषकः—किं भवान् विचारयति ।
राजा—शृणु तावत् प्रहर्तुर्नामाक्षराणि । (वाचयति)

उर्वशीसंभवस्यायमैलसूनोर्धनुर्भृतः ।
कुमारस्यायुषो बाणः संहर्तुर्द्विषदायुषाम् ।।७।।

विदूषकः—(सपरितोषम्) दिष्ट्या संतानेन वर्धते भवान् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

[प्रविश्य कञ्चुकी]

कञ्चुकी—जयतु जयतु देवः । देव ! च्यवनाश्रमात् कुमार गृहीत्वा तापसी संप्राप्ता देवं द्रष्टुमिच्छति ।

राजा—उभयमपि अविलम्बितं प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः ।

[इति निष्क्रम्य चापहस्तेन कुमारेण तापस्या च सह प्रविष्टः]

कञ्चुकी—इत इतो भगवती । (सर्वे परिक्रामन्ति)

विदूषकः—(विलोक्य) किं नु खलु स एष तत्रभवान् क्षत्रिय-कुमारको यस्य नामाङ्कितो गृध्रलक्षवेधी अर्धनाराचः । तथा बहुतरं भवन्तमनुकरोति ।

राजा—स्यादेवम् । अतः खलु—

बाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्
वात्सल्यबन्धि हृदयं मनसः प्रसादः ।
संजातवेपथुभिरुज्झितधैर्यवृत्ति-
रिच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः ॥८॥

कञ्चुकी—भगवति ! एवं स्थीयताम् ।

[तापसीकुमारौ स्थितौ]

राजा—अम्ब ! अभिवादये ।

तापसी—महाभाग ! सोमवंशविस्तारयिता भव । (आत्मगतम्) अहो अनाख्यातोऽपि विज्ञातः अस्य राजर्षेः आयुषश्चौरसः सम्बन्धः । (प्रकाशम्) जात ! प्रणम ते गुरुम् ।

[कुमारश्चापगर्भमञ्जलिं करोति]

राजा—आयुष्मान् भव ।

कुमारः—(आत्मगतम्)

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा
पिता ममायं सुतोऽहमस्येति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

उत्सङ्गवर्धितानां
गुरुषु भवेत् कीदृशः स्नेहः ॥६॥

राजा—भगवति किमागमनप्रयोजनम् ?

तापसी—शृणोतु महाराज ! एष दीर्घायुरायुर्जातमात्र एव उर्वश्या किमपि निमित्तम् अवेक्ष्य मम हस्ते न्यासीकृतः। यत् क्षत्रियकुमारस्य जातकर्मादिविधानं तदस्य भगवता च्यवनेन अशेषमनुष्ठितम्। गृहीतविद्यो धनुर्वेदेऽभिविनीतः।

राजा—सनाथः खलु संवृत्तः।

तापसी—अद्य पुष्पसमिदर्थम् ऋषिकुमारकैः सह गतेनानेन आश्रमविरुद्धमाचरितम्।

विदूषकः—(सावेगम्) किमिव ?

तापसी—गृहीतामिषः किल गृध्रः पादपशिखरे निलीयमानः अनेन लक्षीकृतो बाणस्य।

[विदूषकः राजानमवलोकयति]

राजा—ततस्ततः।

तापसी—तत उपलब्धवृत्तान्तेन भगवता च्यवनेन अहं समादिष्टा। निर्यातय हस्तन्यासमिति। तदिच्छामि देवीमुर्वशीं द्रष्टुम्।

राजा—तेन हि आसनमनुगृह्णातु भगवती।

[तापसी उपनीत आसने उपविशति]

राजा—लातव्य ! आहूयतामुर्वशी।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः।

[इति निष्क्रान्तः]

राजा—(कुमारमवलोक्य) एह्येहि वत्स !

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सर्वाङ्गीणः स्पर्शः
सुतस्य किल तेन मामुपगतेन ।
आह्लादयस्व ताव-
च्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव ॥१०॥

तापसी—जात आनन्दय पितरम् ।

[कुमारो राजानमुपगम्य पादग्रहणं करोति]

राजा—(कुमारं परिष्वज्य पादपीठे चोपवेश्य) वत्स इतस्तव पितुः प्रियसखं ब्राह्मणमशङ्कितो वन्दस्व ।

विदूषकः—किमिति शङ्किष्यते । आश्रमवासपरिचित एव शाखामृगः ।

कुमारः—(सस्मितम्) तात वन्दे ।

विदूषकः—स्वस्ति भवते ।

[ततः प्रविशति उर्वशी कञ्चुकी च]

कञ्चुकी—इत इतो देवी ।

उर्वशी—(कुमारमवलोक्य) को नु खल्वेष सबाणासनः पादपीठोपविष्टः स्वयं महाराजेन संयम्यमान-शिखण्डकः तिष्ठति । (तापसीं दृष्ट्वा) अहो सत्यवतीसूचितो मम पुत्रक आयुः । महान खलु संवृत्तः ।

[परिक्रामति]

[कुमारो राजानमुपगम्य पादग्रहणं करोति]

राजा—(उर्वशीं दृष्ट्वा)

इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा ।
स्नेहप्रस्नवनिर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम् ॥११॥

तापसी—जात एहि प्रत्युद्गच्छ मातरम् ।

[कुमार उर्वशीं प्रत्युद्गच्छति]

उर्वशी—आर्य ! पादप्रणामं करोमि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

तापसी—वत्से! भर्तुर्बहुमता भव ।

कुमारः—अम्ब, अभिवादये ।

उर्वशी—(कुमारमुन्नमितमुखं परिष्वज्य) वत्स ! पितरम् आराधयिता भव । (राजानमुपेत्य) जयतु जयतु महाराजः ।

राजा—स्वागतं पुत्रवत्यै । इत आस्यताम् । (अर्धासनं ददाति)

[उर्वशी उपविशति । सर्वे यथोचितमुपविशन्ति]

तापसी—एष गहीतविद्य आयुः सांप्रतं कवचहरः संवृत्तः । तद् एतस्य ते भर्तुः समक्षं निर्यातितो हस्तनिक्षेपः । तद् आत्मानं विसर्जयितुम् इच्छामि । उपरुध्यते मम आश्रमधर्मः ।

उर्वशी—चिरस्यार्यां दृष्ट्वा अधिकतरम् अवितृष्णास्मि । न शक्नोमि विस्रष्टुम् । अन्याय्यम् उपरोद्धुम् । गच्छत्वार्या पुनर्दर्शनाय ।

राजा—अम्ब ! भगवते च्यवनाय मां प्रणिपातय ।

तापसी—एवं भवतु ।

कुमारः—आर्ये ! सत्यं यदि निवर्तसे तदा मामपि आश्रमं नेतुमर्हसि ।

राजा—अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे । द्वितीयमध्यासितुं तव समयः ।

तापसी—जात ! गुरोर्वचनम् अनुतिष्ठ ।

कुमारः—तेन हि—

यः सुप्तवान् मदङ्के
शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः ।
तं मे जातकलापं
प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम् ॥१२॥

तापसी—(विहस्य) एवं करोमि । स्वस्ति भवतु युष्मभ्यम् ।

[इति निष्क्रान्ता]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रश्नाः

१. अधोनिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरस्सरं व्याख्येयानि—

(क) अपराधी शासनीयः ।

(ख) दिष्टया सन्तानेन वर्धते भवान् ।

(ग) सनाथः खलु संवृत्तः ।

(घ) तदेतस्य ते भर्तुः समक्षं निर्यातितो हस्तनिक्षेपः ।

२. एतेषु प्रकृतिप्रत्ययप्रविभागं ब्रूत—

आक्षिप्तः, आहर्ता, अतीतः, विचीयताम्, मोक्ष्यते, आज्ञापयति परिरब्धुम्, निलीयमानः, सर्वाङ्गीणः, आराधयिता ।

३. एषु समासविग्रहौ प्रदर्श्यौ—

दुकूलोत्तरच्छदे, असमाप्तनेपथ्यः, अलातचक्रप्रतिमम्, वर्णविचार-क्षमा, सञ्जातवेपथुभिः, उज्झितधैर्यवृत्तिः, गृहीतामिषः, शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः ।

४. विक्रमोर्वशीयनाटकस्य कर्त्ता कः ?

५. एतं नाटचांशमवलम्ब्य कुमारस्यायुषः चरित्रं चित्रयत ।

६. उर्वश्या कुमारस्तापस्या हस्ते किमर्थं न्यासीकृतः ?

७. राज्ञा सङ्गमनीयो नाम मणिः कथमुपलब्धः ?

८. कुमारमिदंप्रथमतयाऽवलोक्य राज्ञो मनसि कीदृशी प्रतिक्रिया जाता ?

९. अधोनिर्दिष्टानां शब्दानामर्थं मातृभाषया लिखत—

आलिखन्, अलातचक्रप्रतिमम्, कुणपभोजनः, रत्नकुम्भीरकः, परिगतार्थः, अर्धनाराचः, गृहीतामिषः, निर्यातय, जातकलापम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

१०. क्षत्रियस्य जातकर्मादिविधानं ब्रूत ।

११. नाट्यांशस्यास्य कथावस्तु संक्षेपेण स्वभाषया लिखत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

[कवि-परिचय पृष्ठ १९ पर देखिए]

कथानक

महाराज दुष्यन्त शिकार खेलते हुए, एक मृग का पीछा करते-करते महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचते हैं। महर्षि कण्व तीर्थ-यात्रा को गये हैं। वे शकुन्तला को देखते ही उसके रूप पर मुग्ध हो जाते हैं। वे शकुन्तला की सखियों प्रियंवदा एवं अनुसूया से उसके जन्म के सम्बन्ध में जान लेते हैं। दोनों का गान्धर्व विवाह हो जाता है। कार्यवश राजधानी लौटते हुए शकुन्तला को वे अपनी नामांकित अँगूठी इस विचार से देते हैं कि उनके नाम के जितने अक्षर हैं उतने ही दिनों में उसके अनुचर शकुन्तला को राजमहल में ले जायेंगे। शकुन्तला सदा दुष्यन्त के ध्यान में मग्न रहती है। अचानक महर्षि दुर्वासा आश्रम में आते हैं और दुष्यन्त की चिन्ता में मग्न शकुन्तला से उचित रूप से आतिथ्य न पाकर उसे शाप देते हैं कि उसका प्रियतम उसे भूल जायेगा। प्रियंवदा तथा अनुसूया महर्षि की अनुनय विनय कर शाप की कठोरता को कम कराने का प्रयत्न करती हैं। महर्षि किञ्चित् पसीजते हैं और कहते हैं कि दुष्यन्त ने जो अँगूठी शकुन्तला को पहिनाई थी उसी के देखने से वे उसे पहिचान पायेंगे। स्मरण दिलानेवाले चिह्न अंगूठी से (शाप) कम करा देती हैं। महर्षि कण्व तीर्थयात्रा से लौटकर उन दोनों के विवाह को शास्त्रोचित जान उसकी विदाई की तैयारी करते हैं। विदाई का दृश्य बड़ा ही मार्मिक है। पशु-पक्षी भी उस करुण दृश्य से सन्तप्त हो उठते हैं। दुर्भाग्य से शकुन्तला की अंगूठी मार्ग में शचीतीर्थ में गिर जाती है और उस के अभाव में राजा उसे अनेक बातों को याद दिलाने पर भी स्मरण नहीं

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

कर पाते । शकुन्तला रोती-विलखती अकेली चल पड़ती है । एक दिव्य ज्योति उसे उठाकर मरीचि के आश्रम में उसकी माता मेनका के पास पहुँचा देती है । राजा को एक मछुए से ज्योंही अँगूठी मिलती है, वह शकुन्तला को स्मरण कर दुःखी रहने लगते हैं । अन्त में इन्द्र की सहायता करने के लिए स्वर्ग जाकर, वापिस लौटते हुए मरीचि के आश्रम में वह अपने पुत्र भरत को देखते हैं । वहाँ वे सुख से भरतसहित शकुन्तला को प्राप्त कर अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आते हैं ।

(सप्तमाऽङ्कात्)

[नेपथ्ये]

मा खलु मा खलु चापलं कुरु । कथं गत एव आत्मनः प्रकृतिम् ।

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य, तत् को नु खल्वेवं निषिध्यते, ? (शब्दानुसारेणाऽवलोक्य सविस्मयम्) अये ! को नु खल्वयम् अनुबध्यमानस्तापसीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः ।

अर्ध-पीत-स्तनं मातुरामर्द-क्लिष्ट-केसरम् ।
प्रक्रीडितं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ।।

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्ट-कर्मा तापसीभ्यां सह बालः]

जृम्भस्व, रे सिंह-शावक ! जृम्भस्व । दन्तांस्ते गणयिष्यामि ।

प्रथमा—अविनीत ! किं नः अपत्य-निर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हन्त वर्धते ते संरम्भः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

राजा—किं नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः। (विचिन्त्य) नूनमनपत्यता मां वत्सलयति।

द्वितीया—एषा त्वां केसरिणी लङ्घयिष्यति यद्यस्याः पुत्रकं न मोक्ष्यसि।

बालः—(सस्मितम्) अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि। (इत्यधरं दर्शयति)

राजा—(सविस्मयम्)

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गाऽवस्थया वह्निरेधोऽपेक्ष इव स्थितः॥

प्रथमा—वत्स ! एनं मुञ्च बाल-मृगेन्द्रकम्। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।

बालः—कुत्र ? देह्येतत्। (इति हस्तं प्रसारयति)।

राजा—(बालस्य हस्तं दृष्ट्वा) कथं चक्रवर्ति-लक्षणमप्यनेन धार्यते ! तथा ह्यस्य—

प्रलोभ्य-वस्तु-प्रणय-प्रसारितो
विभाति जाल-ग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्य-पत्रान्तरमिद्ध-रागया
नवोषसा भिन्नमिवैक-पङ्कजम्॥

द्वितीया—सुव्रते ! न शक्य एष वाचा-मात्रेण विरमयितुम्। तद् गच्छ। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्य ऋषि-कुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिका-मयूरकस्तिष्ठति तमस्योपहर।

प्रथमा—तथा। (निष्क्रान्ता)

बालः—तावत् अनेनैव क्रीडिष्यामि। (इति तापसीं विलोक्य हसति)

राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायाऽस्मै। (निःश्वस्य)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

आलक्ष्य-दन्त-मुकुलाननिमित्त-हासै-
रव्यक्त-वर्ण-रमणीय-वचः-प्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रय-प्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्ग-रजसा मलिनीभवन्ति ॥

तापसी—(सांगुलितर्जनम्) भो ! न मां गणयसि । (पार्श्वमवलोक्य) कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् (राजानमवलोक्य) भद्रमुख ! एहि तावत् । मोचय अनेन दुर्मोच-हस्त-ग्रहेण डिम्भ-लीलया बाध्यमानं बाल-मृगेन्द्रकम् ।

राजा—तथा (इत्युपगम्य सस्मितम्) अयि भो महर्षि-पुत्रक !

एवमाश्रम-विरुद्ध-वृत्तिना
संयमः किमिति जन्मतस्त्वया ।
सत्त्व-संश्रयगुणोऽपि दूष्यते
कृष्ण-सर्प-शिशुनेव चन्दनः ॥

तापसी—भद्रमुख ! न खल्वेष ऋषि-कुमारकः ।

राजा—आकार-सदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति । स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः । (यथाऽभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालकस्य स्पर्शमुपलभ्य स्वगतम्)

अनेन कस्यापि कुलाऽङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्
यस्याऽयमङ्गात् कृतिनः प्ररूढः ॥

तापसी—(उभौ निर्वर्ण्य) आश्चर्यम् ! आश्चर्यम् ।

राजा—आर्ये ! किमिव ?

तापसी—अस्य बालकस्य असम्बन्धेऽपि भद्रमुखे रूपसंवादिनी आकृतिरिति विस्मितास्मि । अपि च वामशीलोऽपि भूत्वा अपरिचितस्यापि ते अप्रतिलोमः संवृत्तः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

राजा—(बालमुपलालयन्) आर्ये ! न चेत् मुनिकुमारोऽयम्, तत् कोऽस्य व्यपदेशः ?

तापसी—पुरुवंशः ।

राजा—(स्वगतम्) कथमेकान्वयो मम ! अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते । (प्रकाशम्) अस्त्येतत् पौरवाणाम अन्त्यं कुलव्रतम् ।

भवनेषु रसाऽधिकेषु पूर्वं
क्षिति-रक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।
नियतैक-यति-व्रतानि पश्चात्
तरु-मूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥

न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः ।

तापसी—यथा भद्रमुखो भणति अप्सरःसम्बन्धेन पुनरस्य बालस्य जननी इहैव देवगुरोः तपोवने प्रसूता ।

राजा—(स्वगतम्) हन्त, द्वितीयमिदमाशा-जननम् । (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ?

तापसी—कस्तस्य धर्म-दार-परित्यागिनो नाम सङ्कीर्तयितुं चिन्तयिष्यति ।

राजा—(स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति । (विचिन्त्य) यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि ? अथवा अनार्यः खलु परदार-व्यवहारः ।

[प्रविश्य मृन्मयूर-हस्ता]

तापसी—सर्वदमन ! प्रेक्षस्व शकुन्त-लावण्यम् ।

बालः—(सदृष्टिक्षेपम्) कुत्र वा मे माता ? (उभे प्रहसतः)

प्रथमा—नाम-सादृश्येन वञ्चितो मातृ-वत्सलः ।

द्वितीया—वत्स! अस्य मृत्तिका-मयूरस्य रम्यत्वं प्रेक्षस्व इति भणितोऽसि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

राजा—(स्वगतम्) किं शकुन्तलेति अस्य मातुराख्या ? अथवा सन्ति पुनर्नामधेय-सादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्र-प्रस्तावो विषादाय कल्पते।

बालः—अन्तिके ! रोचते मे एष भद्रमयूरः। (क्रीडनकमादत्ते)

प्रथमा—(विलोक्य सोद्वेगम्) अहो, रक्षाकरण्डकम् अस्य मणिबन्धे न दृश्यते।

राजा—आर्ये ! अलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंह-शावकस्य विमर्दात् परिभ्रष्टम्। (आदातुमिच्छति)

उभे—मा खलु, मा खलु, एतदवलम्ब्य। कथं गृहीतमनेन !

[विस्मयादुरो-निहित-हस्ते परस्परमवलोकयतः]

राजा—किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः ?

प्रथमा—शृणोतु महाराज ! एषा महाप्रभावा अपराजिता नाम सुरमहौषधिः अस्य दारकस्य जातकर्म-समये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरौ आत्मानञ्च वर्जयित्वा अपरो भूमि-पतितां न गृह्णाति।

राजा—अथ गृह्णाति ?

प्रथमा—ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति।

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ?

उभे—अनेकशः।

राजा—(सहर्षमात्मगतम्) तत् किमिदानीं सम्पूर्णमपि आत्मनो मनोरथं नाभिनन्दामि। (बालं परिष्वजते)

द्वितीया—सुव्रते ! एहि। इमं वृत्तान्तं नियम-व्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः।

[निष्क्रान्ते]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रश्नाः

१. निम्नलिखितानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरस्सरं व्याख्यात—
   (क) नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।
   (ख) अथ चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते ।
   (ग) आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति ।
   (घ) कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम सङ्कीर्तयितुं चिन्तयिष्यति ।
   (ङ) अथवा अनार्यः खलु परदारव्यवहारः ।

२. एषु वाक्येषु कारक-प्रतिपादनं क्रियताम्—
   किन्नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मनः, स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै, बलात्कारेण कर्षति, अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते, आर्ये ! अलमावेगेन, इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः ।

३. एषां पदानामर्थान् निर्दिशत—
   रूपसंवादिनी, अप्रतिलोमः, व्यपदेशः, एकान्वयः, रक्षाकरण्डकः, मणिबन्धः, उशन्ति ।

४. एषु समासविग्रहौ प्रदर्श्यौ—
   क्षितिरक्षार्थम्, धर्मदारपरित्यागिनः, सदृष्टिक्षेपम् ।

५. अधोनिर्दिष्टेषु रेखाङ्कितेषु पदेषु किं नाम वैशिष्टयम् ?
   (क) अभूमिरियमविनयस्य ।
   (ख) एषा त्वां केसरिणी लङ्घयिष्यति, यद्यस्याः पुत्रकं न मोक्ष्यसि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मुद्राराक्षसम्

कवि-परिचय

भास एवं कालिदास की भांति विशाखदत्त भी अपना परिचय बताने में उदासीन रहे हैं। प्रस्तावना के अनुसार संभवतः इनके पिता का नाम महाराज पृथु अथवा महाराज भास्करदत्त तथा पितामह का नाम सामन्त वटेश्वरदत्त था। भारतीय ऐतिहासिक सामग्री में इनका कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं है और न ही इनके दत्त वंश का ही। भरत वाक्य में कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा के उल्लेख के कारण विशाखदत्त को सातवीं या आठवीं शताब्दी का कवि स्वीकार किया जाता है।

प्रोफेसर ध्रुव के अनुसार हूण-नाशक अवन्तिवर्मा महाराज प्रभाकर-वर्धन के सम्बन्धी रहे होंगे। इन्होंने सन् ५८५ के आसपास हूणों को पराजित किया। अतः विशाखदत्त का समय छठी शताब्दी होना चाहिए। पर विशाखदत्त की नाटकीय शैली एवञ्च बोधिसत्त्व का अनुकरण करने वाला चन्दनदास का चरित्र, चौथी शताब्दी के अनुकूल हैं। संस्कृत-नाटक-साहित्य में भास, शूद्रक, कालिदास एवं विशाखदत्त—इन चार विभूतियों के साम्य को ध्यान में रखते हुए विशाखदत्त को चौथी या पाँचवीं शताब्दी का कवि माना जा सकता है।

नाटककार के रूप में विशाखदत्त ने राष्ट्रजीवन के दार्शनिक तत्त्व, राजनैतिक आदर्शवाद तथा मनुष्यता के प्रति महाविश्वास को ही मुख्य रूप प्रदान किया है। अपने युग अथवा भविष्य की गणतन्त्रात्मक अथवा प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को इन्होंने राष्ट्र-जीवन का सही आदर्श माना है। राजनीति के आदर्श की ओर ध्यान देते हुए लेखक ने राष्ट्र-नायकों के हृदय-परिवर्तन को मुख्यता दी है। चाणक्य और राक्षस,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का हृदय-परिवर्तन राष्ट्र के हितार्थ ही होता है। लेखक की कृतियों के रूप में केवल तीन का नाम लिया जाता है। (१) राघवानन्द। यह उपलब्ध नहीं है। (२) देवी चन्द्रगुप्त। इसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय, अपने अयोग्य भाई रामगुप्त की पत्नी ध्रुवदेवी को शकों से बचाता है और रामगुप्त का वध कर ध्रुवदेवी से विवाह कर लेता है। वह भाई के राज्य को भी अपना लेता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। इसके कुछ अंश ही उपलब्ध हैं। (३) मुद्राराक्षस।

कथानक

महानीतिज्ञ चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हो चुके हैं। उन्होंने विजय के उपलक्ष्य में कौमुदी-महोत्सव मनाने की घोषणा की है एवं उत्सव के हर्षमय स्वप्नों में खोये हुए हैं परन्तु चाणक्य चिन्ताकुल हैं। उन्हें चिन्ता है कि कहीं चन्द्रगुप्त के कौमुदी-महोत्सव के आमोद-प्रमोद में लिप्त होने पर मलयकेतु एवं राक्षस रंग में भंग न कर दें। वह चिन्ता के आवेश में इस प्रकार मग्न हो जाते हैं कि शत्रुओं को सामने खड़ा हुआ देखने की कल्पना में चिल्ला उठते हैं कि चाणक्य के जीते जी चन्द्रगुप्त का लेशमात्र अनिष्ट चाहने वाले की ईश्वर भी रक्षा नहीं कर सकेगा। वह शान्त तो हो जाते हैं परन्तु अत्यधिक सतर्क एवं कर्त्तव्यपरायण रहते हैं। वह केवल यही सोचते रहते हैं कि किस प्रकार महाराज नन्द के महाभक्त राक्षस को वश में किया जाए, ताकि लाठी भी न टूटे और साँप भी मारा जाय। चाणक्य जानते हैं कि राक्षस की सांग्रामिक शक्ति के होते हुए चन्द्रगुप्त का राज्य स्थिर नहीं रह सकता। राक्षस के हृदय पर विजय पाना तथा उनकी नन्द-भक्ति की छत्रच्छाया में चन्द्रगुप्त को सुरक्षित रखना यही चाणक्य का उद्देश्य है। इसी प्रकार का शतरंज का खेल

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

खेलने के लिए चाणक्य की नीति कार्य करती है। चाणक्य के गुप्तचर राक्षस का परम स्नेह प्राप्त करते हैं तथा मलयकेतु के दायें-बायें रहकर उसकी मन्त्रणाओं को कार्यान्वित करते हैं। इधर राक्षस अपने उपायों को विफल होता देख चन्द्रगुप्त और चाणक्य में फूट डालना ही चाहता है कि चाणक्य स्वयं चन्द्रगुप्त से झगड़ा कर लेते हैं। राक्षस चाणक्य की इस चाल को नहीं समझ पाता और कौमुदी-महोत्सव को लेकर खड़े हुए उनके कृतक कलह को अपनी दूरदर्शिता समझ बैठता है। चाणक्य राक्षस की उस सन्तुष्टि को ही अपना अमोघास्त्र बना लेता है। वह राक्षस की मुद्रा के द्वारा एक ऐसे कूटलेख का प्रयोग कराता है जिसे लेकर उसके गुप्तचर, जो कि मलयकेतु के दाएँ-बाएँ रहते हैं, मलय-केतु के हृदय में राक्षस के प्रति घोर अविश्वास उत्पन्न करा देते हैं। इस प्रकार पाटलिपुत्र पर आक्रमण का षड्यन्त्र तो दूर रहा; राक्षस की महत्त्वाकांक्षाएँ धूलि-धूसरित हो जाती हैं और उसकी सेना-शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है। राक्षस विवश हो जाता है। राक्षस को आत्मसमर्पण के लिए विवश कराने के लिए चाणक्य ने उसके परम मित्र धनकुबेर चन्दनदास को राजद्रोह में शूली पर चढ़ाने का दण्ड निर्धारित किया है। राक्षस उसे छुड़ाने के लिए आत्म-समर्पण करता है। चाणक्य राक्षस को तब तक नहीं छोड़ता जब तक कि वह (राक्षस) चन्द्रगुप्त को पूरी तरह नहीं अपना लेता। अन्ततोगत्वा राक्षस मौर्य-भक्ति के लिए वचन देता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

(सप्तमाऽङ्कात्)

[ततः प्रविशति द्वितीयचाण्डालानुगतो वध्यवेशधारी शूलं स्कन्धे-
नादाय कुटुम्बिन्या पुत्रेण चानुगम्यमानश्चन्दनदासः]

चन्दनदासः—(सवाष्पम्) हा धिक् हा धिक्! अस्मादृशानामपि नित्यं चारित्रभङ्गभीरूणां चोरजनोचितं मरणं भवतीति नमः कृतान्ताय। अथवा न नृशंसानाम् उदासीनेषु इतरेषु वा विशेषोऽस्ति। तथा हि—

मुक्त्वा आमिषाणि मरणभयेन तृणैर्जीवन्तम्।
व्याधानां मुग्धहरिणं हन्तुं को नाम निर्बन्धः॥

(समन्तादवलोक्य) भोः प्रियवयस्य विष्णुदास! कथं प्रतिवचनमपि न मे प्रतिपद्यसे। अथवा दुर्लभास्ते खलु मानुषा य एतस्मिन्काले दृष्टिपथेऽपि तिष्ठन्ति। (सवाष्पम्) एतेऽस्मत्प्रियवयस्या अश्रुपातमात्रेण कृत-निवाप-सलिला इव कथमपि प्रतिनिवर्तमानाः शोक-दीनवदना बाष्पगुर्व्या दृष्ट्या मामनुगच्छन्ति। (इति परिक्रामति)

चाण्डालः—आर्य चन्दनदास! आगतोऽसि वध्यस्थानम्। तद्विसर्जय परिजनम्।

चन्दनदासः—कुटुम्बिनि! निवर्त्तस्व साम्प्रतं सपुत्रा। न युक्तं खल्वतोऽपरमनुगन्तुम्।

कुटुम्बिनी—(सवाष्पम्) परलोकं प्रस्थित आर्यो न देशान्तरम्।

चन्दनदासः—आर्ये! अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुष-दोषेण। तदलं विषादेन।

कुटुम्बिनी—आर्य! यद्येवम्, तदिदानीमकालः कुलजनस्य निवर्तितुम्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

चन्दनदासः —अथ किं व्यवसितं कुटुम्बिन्या ?

कुटुम्बिनी—भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवतीति ।

चन्दनदासः —आर्ये ! दुर्व्यवसितमिदं त्वया । अयं पुत्रकोऽश्रुत-
लोकसंव्यवहारो बालोऽनुग्रहीतव्यः ।

कुटुम्बिनी—अनुगृह्णन्त्वेनं प्रसन्ना देवताः । जात पुत्रक ! पत
पश्चिमयोः पितुः पादयोः ।

पुत्रः —(पादयोर्निपत्य) तात किमिदानीं मया तातविरहितेना-
नुष्ठातव्यम् ?

चन्दनदासः —पुत्र ! चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम् ।

चाण्डालः —आर्य चन्दनदास ! निखातः शूलः । तत्सज्जो भव ।

कुटुम्बिनी—आर्याः ! परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ।

चन्दनदासः —आर्ये ! अथ किमत्र आक्रन्दसि । स्वर्गं गतानां
तावद्देवा दुःखितं परिजनमनुकम्पन्ते । अन्यच्च मित्र-
कार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण । तत्किं हर्षस्थानेऽपि
रुद्यते ।

प्रथमश्चाण्डालः —अरे विल्वपत्र ! गृहाण चन्दनदासम् । स्वय-
मेव परिजनो गमिष्यति ।

द्वितीयश्चाण्डालः —अरे वज्रलोमन् ! एष गृह्णामि ।

चन्दनदासः—भद्र ! मुहूर्तं तिष्ठ यावत्पुत्रकं सान्त्वयामि । (पुत्रं
मूर्ध्नि आघ्राय) जात ! अवश्यभवितव्ये विनाशे मित्र-
कार्यं समुद्वहमानो विनाशमनुभवामि ।

पुत्रः —तात ! किमिदमपि भणितव्यम् । कुलधर्मः खल्वेषो-
ऽस्माकम् । (इति पादयोः पतति)

चाण्डालः —अरे ! गृहाणैनम् ।

कुटुम्बिनी—(सोरस्ताडम्) आर्य ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।
(प्रविश्य पटाक्षेपेण)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

राक्षसः —भवति ! न भेतव्यम् । भो भोः शूलायतनाः ! न खलु व्यापादयितव्यश्चन्दनदासः ।

येन स्वामिकुलं रिपोरिव कुलं दृष्टं विनश्यत्पुरा,
मित्राणां व्यसने महोत्सव इव स्वस्थेन येन स्थितम् ।
आत्मा यस्य वधाय वः परिभवक्षेत्रीकृतोऽपि प्रिय-
स्तस्येयं मम मृत्युलोकपदवी वध्यस्रगाबध्यताम् ॥

चन्दनदासः —(सबाष्पं विलोक्य) अमात्य ! किमिदम् ?

राक्षसः—त्वदीयसुचरितकदेशस्यानुकरणं किलैतत् ।

चन्दनदासः —अमात्य ! सर्वमपीमं प्रयासं निष्फलं कुर्वता त्वया किमनुष्ठितम् !

राक्षसः—सखे ! स्वार्थ एवानुष्ठितः । कृतमुपालम्भेन । भद्रमुख! निवेद्यतां दुरात्मने चाणक्याय ।

वज्रलोमा—किमिति ?

राक्षसः—

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता,
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः ।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना,
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतः शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः ॥

प्रथमः —अरे बिल्वपत्रक ! त्वं तावच्चन्दनदासं गृहीत्वेहैतस्य श्मशानपादपस्य च्छायायां मुहूर्तं तिष्ठ यावदहं चाणक्यस्य निवेदयामि गृहीतोऽमात्यराक्षस इति ।

द्वितीयः —अरे वज्रलोमन् ! गच्छ ।

[इति सपुत्रदारेण चन्दनदासेन सह निष्क्रान्तः]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रश्नाः

१. अधोनिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरःसरं व्याख्येयानि—
  (क) परलोकं प्रस्थित आर्यो न देशान्तरम् ।
  (ख) पुत्र चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम् ।
  (ग) मित्रकार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण ।

२. एषु समासविग्रहौ प्रदर्श्यौ—
दृष्टिपथे, सपुत्रा, अश्रुतलोकसंव्यवहारः ।

३. एषु वाक्येषु कारकप्रतिपादनं क्रियताम्—
  (क) अथवा न नृशंसानाम् उदासीनेषु इतरेषु वा विशेषोऽस्ति ।
  (ख) भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवतीति ।
  (ग) कृतमुपालम्भेन ।

४. चन्दनदासः किमर्थं वध्यस्थानं नीतः ?

५. विशाखदत्तः कस्मिन्काले जन्म लब्धवान् ?

६. 'चन्दनदासेनोक्तम्—मित्रकार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण'—किं तन्मित्रकार्यं येन तस्य विनाशः ?

७. चन्दनदासपत्न्याश्चन्दनदासस्य च संवादं स्वशब्दैर्नातिविस्तरेण लिखत ।

८. मुक्त्वा आमिषाणि मरणभयेन तृणैर्जीवन्तम् ।
व्याधानां मुग्धहरिणं हन्तुं को नाम निर्बन्धः ।।
—पद्यस्यास्याभिप्रायः विशदं स्फोरणीयः ।

९. राक्षसेन चाण्डालौ चन्दनदासहननात्किमिति वारितौ ?

१०. नाटयांशस्यास्य कथावस्तु संक्षेपेण मातृभाषया लिखत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मृच्छकटिकम्

कवि-परिचय

कुछ विद्वान् प्रसिद्ध प्रकरण मृच्छकटिक के रचयिता राजा शूद्रक को एक कल्पित व्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते। इनके व्यक्तित्व पर कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। परन्तु शूद्रक नामक कोई राजा जो कि साहित्यिक भी था, संस्कृत-साहित्य में भिन्न-भिन्न स्थानों पर उल्लिखित है। कादम्बरी, कथासरित्सागर, वेताल-पञ्चविंशति, हर्षचरित, राजतरंगिणी और स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थों में शूद्रक का लेखकों ने आदरपूर्वक उल्लेख किया है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना में दो श्लोकों में वर्णित शूद्रक का परिचय प्रक्षिप्त प्रतीत होता है क्योंकि कोई भी रचनाकार अपनी मृत्यु का उल्लेख स्वयं नहीं कर सकता। परन्तु इससे इतना अवश्य जान पड़ता है कि शूद्रक या किसी अन्य ने उनकी ओर से मृच्छकटिक की रचना की तथा शूद्रक एक राजा थे। वामनाचार्य ने (८०० ई०) अपने ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में मृच्छ-कटिक के दो पद्य उद्धृत किये हैं और शूद्रक को उनका रचयिता माना है। कीथ के अनुसार किसी रामिल या सौमिल्ल नामक अज्ञात कवि ने भास के चारुदत्त को ही परिवर्धित कर उसे मृच्छकटिक नाम दिया।

कालिदास के नाटकीय कलापक्ष पर शूद्रक की पूरी छाप है। वैसे कालिदास शूद्रक के प्रति मौन हैं। कालिदास ने सम्भवतः अपने समय की राजनैतिक अशांति के कारण तथा शूद्रक की ख्याति न होने के कारण उसका उल्लेख नहीं किया होगा अथवा कालिदास ने मृच्छकटिक का रचयिता रामिल या सौमिल्ल को समझा होगा क्योंकि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की भूमिका में इनका उल्लेख भास के साथ-साथ किया है। यह भी सम्भव है कि शूद्रक का नाटक, कालिदास के नाटकों से

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पहले अभिनीत न हुआ हो अथवा राजा ने अवकाश काल में इसे लिखा हो तथा कालिदास का मालविकाग्निमित्र तब तक लिखा जा चुका हो। मृच्छकटिक की प्राकृतें व्याकरण के नियमों के निर्धारण से पहले की जान पड़ती हैं। इनमें भास के नाटक चारुदत्त का पग-पग पर अनुकरण हुआ है। अतः यह नाटक भास के पश्चात् ही रचा गया होगा।

भास, कालिदास और शूद्रक का स्थितिकाल एकदम निकटवर्ती जान पड़ता है। भास यदि प्रथम शताब्दी ई० पूर्व के पूर्वार्ध में एवञ्च कालिदास उत्तरार्ध में हुए तो शूद्रक इस शताब्दी के अन्त में हुए। यही मत उचित जान पड़ता है।

शूद्रक पात्रों के चरित्रचित्रण में अतीव सिद्धहस्त हैं। इस नाटक में पात्रों की संख्या बहुत अधिक है परन्तु संस्थानक, मैत्रेय और मदनिका में सार्वकालिकता और सार्वदेशिकता है। समाज के सभी स्तरों के पात्र इसमें चुने गये हैं जिससे नाटक में यथार्थता, रोचकता एवं गतिशीलता आ गई है। कथावस्तु में प्रवाह और क्रिया में गति है। कवि संक्षिप्त सशक्त और सारगर्भित वाक्य लिखने में कुशल है। कथावस्तु में जीवन की विविध एवं वास्तविक घटनाओं के वर्णन ने रंगमंच की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। कथा में कहीं जुआ खेलनेवाले मूर्ख संवाहक का वर्णन है, कहीं ब्राह्मण चोर शर्विलक अपनी प्रेमिका के लिए सेंध लगाता है, कहीं पालकियाँ बदली जाती हैं। एक ओर वसन्तसेना की हत्या का प्रयत्न है तो दूसरी ओर न्यायालय का और वधस्थल का भी दृश्य है। इसी प्रकार यदि एक ओर पति-भक्ति, करुणा, गुणग्राहकता है तो दूसरी ओर कपट, पाखण्ड, मूर्खता और निर्दयता है।

कथानक

चारुदत्त नामक ब्राह्मण से उज्जयिनी की एक वेश्या वसन्तसेना प्रेम करती है। तत्कालीन राजा पालक का साला शकार उसे पाना चाहता है। एक दिन अँधेरी रात में शकार से बचने के लिए अपने आभूषणों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

को वसन्तसेना चारुदत्त के घर रख देती है जिन्हें शर्विलक नामक व्यक्ति अपनी प्रेमिका, वसन्तसेना की दासी मदनिका को सेवा के भार से छुड़ाने के लिए सेंध लगाकर चुरा ले जाता है। मदनिका तो छूट जाती है परन्तु चारुदत्त की पतिव्रता पत्नी धूता को आभूषणों के बदले में अपनी अमूल्य रत्नावली वसन्तसेना को देनी पड़ती है। एक दिन चारुदत्त का पुत्र रोहसेन मिट्टी की गाड़ी से खेलता हुआ वसन्तसेना के घर पहुँच जाता है। उसे एक धनिक पुत्र की सोने की गाड़ी पसन्द है। वसन्तसेना उसे सोने की गाड़ी खरीदने के लिए अपने सोने के आभूषण दे देती है। नाटक का नाम मृच्छकटिक इसी लिए रखा गया है। वसन्तसेना प्रणयालाप के लिए चारुदत्त के घर आती है और दूसरे ही दिन पुष्पकरण्डक नामक उद्यान में उसे मिलने जाती है और शीघ्रता में शकार की गाड़ी में बैठ जाती है। राजा पालक सिद्ध वाणी के अनुसार गोपाल के पुत्र आर्यक को राजा बनने के भय से कारागार में डाल देता है। आर्यक वहाँ से भाग निकलता है और चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। गाड़ीवान गाड़ी चला देता है। दो सिपाही उसे रास्ते में मिलते तो हैं परन्तु उनमें से एक आर्यक को ही बचाना चाहता है। आर्यक चारुदत्त से मिलकर चला जाता है। शकार वसन्तसेना को अपने वश में न होते देख उसका गला घोंट देता है और संवाहक नामक बौद्ध भिक्षु उसे पुनर्जीवित करता है। शकार चारुदत्त को वसन्तसेना के वध के अपराध में फाँसी का दण्ड दिलाता है परन्तु आर्यक पालक का वध कर राजा बन जाता है और चारुदत्त को मुक्त कर देता है। शकार को फाँसी का हुक्म होता है परन्तु चारुदत्त उसे भी क्षमा करा देता है। अन्त में चारुदत्त और वसन्तसेना का विवाह हो जाता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

(षष्ठाऽङ्कात्)

[ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका]

रदनिका—एहि वत्स! शकटिकया क्रीडावः।

दारकः—(सकरुणम्) रदनिके किं ममैतया मृत्तिका-शकटिकया? तामेव सौवर्ण-शकटिकां देहि।

रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) जात! कुतोऽस्माकं सुवर्ण-व्यवहारः। तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्ण-शकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्याया वसन्त-सेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। (उपसृत्य) आर्ये! प्रणमामि।

वसन्तसेना—रदनिके! स्वागतं ते। कस्य पुनरयं दारकः? अनलंकृत-शरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

रदनिका—एष खल्वार्य-चारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।

वसन्तसेना—(वाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्रक! आलिंग। (इत्यंक उपवेश्य) अनुकृतमनेन पितू रूपम्।

रदनिका—न केवलं रूपम्, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्य-चारुदत्त आत्मानं विनोदयति।

वसन्तसेना—अथ किंनिमित्तमेष रोदिति?

रदनिका—एतेन प्रतिवेशिक-गृहपति-दारकस्य सुवर्ण-शकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां याचतो मयेयं मृत्तिका-शकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति—'रदनिके! किं ममैतया मृत्तिका-शकटिकया। तामेव सौवर्ण-शकटिकां देहि इति।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वसन्तसेना—हा धिक् हा धिक् ! अयमपि नाम पर-संपत्त्या संतप्यते । भगवन्कृतान्त ! पुष्कर-पत्रपतित-जल-बिन्दु-सदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुष-भागधेयैः । (इति सास्रा) जात ! मा रुदिहि । सौवर्ण-शकटिकया क्रीडिष्यसि ।

दारकः—रदनिके ! कैषा ?

वसन्तसेना—पितुस्ते गुणनिर्जिता दासी ।

रदनिका—जात ! आर्या ते जननी भवति ।

दारकः—रदनिके ! अलीकं त्वं भणसि । यद्यस्माकमार्या जननी तत्किमर्थमलंकृता ।

वसन्तसेना—जात ! मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि । (नाटयेनाभरणान्यवतार्य रुदती) एषेदानीं ते जननी संवृत्ता । तद् गृहाणैतमलंकारम् । सौवर्ण-शकटिकां कारय ।

दारकः—अपेहि । न ग्रहीष्यामि । रोदिषि त्वम् ।

वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जात ! न रोदिष्यामि । गच्छ । क्रीड । (अलंकारैर्मृच्छकटिकं पूरयित्वा) जात ! कारय सौवर्ण-शकटिकाम् ।

[इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका]

प्रश्नाः

१. अधोनिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरस्सरं व्याख्येयानि—

(क) अनुकृतमनेन पितू रूपम् ।

(ख) भगवन् कृतान्त ! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

(ग) जात ! मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि ।

२. अस्य नाट्यांशस्य कथानकं संक्षेपेण हिन्दीभाषया लिखत ।

३. मृच्छकटिकस्य कः प्रणेता ? तद्विषये किं ज्ञायते भवद्भिः ?

४. आर्य-चारुदत्त-दारकः किमर्थं सन्तप्यते ?

५. रदनिकयाऽऽर्यचारुदत्तदारकाय किमर्थं मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता ?

६. वसन्तसेना किमिति स्वान्याभरणान्यवतार्य ददाति ?

७. एषु समासविग्रहौ प्रदर्श्यौं—
प्रतिवेशिगृहपतिदारकस्य, अनलङ्कृतशरीरः, पुष्करपत्रपतितजल-बिन्दुसदृशैः ।

८. एषामर्थं मातृभाषया लिखत—
सुवर्णव्यवहारः, ऋद्ध्या, अलीकम्, गृहाण ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

उत्तररामचरितम्

कवि-परिचय

संस्कृत-साहित्य में कालिदास के परवर्ती कवियों में भवभूति ही कालिदास के समक्ष कुछ ठहर पाते हैं। भवभूति केवल नाटककार हैं। इनके तीन नाटक उपलब्ध हैं—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। भवभूति का परिचय उनके नाटकों से इस प्रकार प्राप्त होता है—यह विदर्भ में पद्मपुर के निवासी थे। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा को मानने वाले थे। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। इनका प्रारम्भिक नाम श्रीकण्ठ था। बाद में कुछ श्लोकों के लेखन के आधार पर 'भवभूति' नाम प्रसिद्ध हुआ। इनके स्थिति-काल के सम्बन्ध में निर्णय इस प्रकार लिया जा सकता है। मम्मट (११०० ई०), धनञ्जय (९९५ ई०), सोमदेव (९५९ ई०) ने अपनी रचनाओं में भवभूति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। राजशेखर (९००) ने तो अपने-आपको भवभूति का अवतार ही मान लिया था। वामन ने भी अपनी रचना 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' में इनके उत्तररामचरित का एक पद्य उद्धृत किया है। बाण के हर्ष-चरित में कालिदास एवं भासादि के साथ भवभूति का नामोल्लेख न होने के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि या तो उनके समय तक भवभूति का जन्म नहीं हुआ था या बाण को भवभूति की कलात्मकता के प्रति विशेष रुचि नहीं थी। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार यह कन्नौज के राजा यशोवर्मा की सभा के राजकवि थे। यशोवर्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने, जिसका राज्यकाल ६९३ से ७२९ ई० माना जाता है, परास्त किया था। डा० स्टाइन के मतानुसार भी इस घटना का

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

समय ७३६ ई० स्वीकार किया जाता है। इस घटना के साथ ही राजतरंगिणी में भवभूति के संग वाक्पतिराज का भी उल्लेख है। वाक्पतिराज ने 'गौडवहो' में यशोवर्मा का यशोगान किया है। गौडवहो एक अधूरा काव्य है। सम्भवतः यह यशोवर्मा की विजय की प्रशंसा में लिखा गया था। उनके परास्त होने पर पूर्ण नहीं किया गया। वाक्पति-राज द्वारा हुई भवभूति की प्रशंसा सम्भवतः यशोवर्मा के राज्यकाल के पूर्वार्ध में प्रसिद्ध हो चुकी थी। इन सब प्रमाणों के आधार पर भव-भूति का समय ७०० ई० के निकट ही निश्चित किया जा सकता है। भवभूति के नाटकों की प्रस्तावना से ऐसा निर्णय लिया जाता है कि ये नाटक उज्जयिनी के महाराज कालप्रियानाथ की राजसभा में अभिनीत किये गये थे। इनके नाटकों में उत्तररामचरित अन्तिम रचना है तथा सभी रचनाओं में श्रेष्ठ मानी जाती है।

कथानक

रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक के महोत्सव में आये हुए सभी राजाओं के साथ महाराज जनक भी लौट गये हैं। सीता उनके जाने से उदास है। रामचन्द्र जी उन्हें सान्त्वना दे ही रहे हैं कि लक्ष्मण अर्जुन चित्रकार द्वारा चित्रित चित्र को प्रस्तुत करते हैं तथा रामचन्द्र जी के अब तक के जीवन-चरित का सीता का मन बहलाने के लिए प्रदर्शन करते हैं। तभी दुर्मुख रामचन्द्र जी के समक्ष सीता के रावण के घर में रहने से लोकापवाद का वर्णन करता है। रामचन्द्र जी सीता को गङ्गादर्शन की इच्छा के बहाने लक्ष्मण द्वारा निर्वासित कर देते हैं। बारह वर्ष बाद आत्रेयी तथा वासन्ती सीता के दो पुत्रों के लालन-पालन की चर्चा करती हैं। रामचन्द्र जी दण्डकारण्य में तपस्या के अनधिकारी शूद्र शम्बूक का वध करते हैं और उसके दिव्य पुरुष बन जाने पर दण्डकारण्य में सीता की स्मृतियों से सम्बद्ध प्रदेशों को देख दुःखी होते हैं। सीता भी वहाँ छाया रूप में पुनः पुनः रामचन्द्र जी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

को अचेतावस्था से सचेत करती हैं। उनके विलापों के कारण इस समय नाटक में करुण रस की परिपक्व दशा का संचार होता है। कौसल्या और जनक ऋष्यश्रृङ्ग के आश्रम से वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं। वे दोनों दुःखी हैं। एक दूसरे को तसल्ली देते हैं। वहीं ब्रह्मचारियों के साथ वे लव को खेलता हुआ देखते हैं तथा लव से रामायण की कथा का आनन्द प्राप्त करते हैं। तभी लव बालकों के साथ रामाश्वमेध के घोड़े को पकड़ लेता है। अश्व के संरक्षक लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु वहाँ पहुँचते हैं। घोड़े को वापस लेने के लिए दोनों ही के मन में एक दूसरे के लिए अनुराग उत्पन्न हो जाता है। दोनो में युद्ध होता है और अकस्मात् रामचन्द्र जी के आ जाने से युद्ध समाप्त हो जाता है। राम अपने दोनों अज्ञात पुत्रों के प्रति स्नेह प्रकट करते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने एक दिव्य नाटक के अभिनय का प्रवन्ध किया है। उसमें सीता के वन में दुःखी होकर गंगा में कूदने, पुत्रों के उत्पन्न होने तथा उन दोनों के वाल्मीकि द्वारा पालित-पोषित होने के दृश्य देख राम मूर्च्छित हो जाते हैं। वसिष्ठ ऋषि की पत्नी अरुन्धती सीता को लेकर आती हैं। सीता राम को अपने स्पर्श से होश में लाती है और वाल्मीकि लव कुश को रामचन्द्र जी को सौंप देते हैं और यहीं नाटक की परिसमाप्ति हो जाती है।

(चतुर्थाऽङ्कात्)

[नेपथ्ये कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति]

जनकः—अये! अद्य खलु शिष्टानध्याय इत्युद्धतं खेलतां बटूनां कलकलः।

कौसल्या—सुलभसौख्यं तावत् बालत्वं भवति। (निरूप्य) अहो एतेषां मध्ये क एष रामभद्र-लक्ष्मी-परिशोभितैः

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सावष्टम्भ-मुग्ध-ललितैरङ्गै रस्माकं लोचनानि शीतल-
यति।

अरुन्धती—(अपवार्य। सहर्षवाष्पम्) इदं नाम तद् भागीरथी-
निवेदित-रहस्यं कर्णामृतम्। नत्वेवं विद्मः कतरोऽयमा-
युष्मतोः कुशलवयोरिति। (प्रकाशम्)

कुवलय-दल-स्निग्ध-श्यामः शिखण्डक-मण्डनो,
बटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम्॥१॥

कञ्चुकी—नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।

जनकः—एवमेतत्। अस्य हि—

चूडा-चुम्बित-कङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्म-स्तोक-पवित्र-लाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः॥२॥

भगवत्यरुन्धति किमुत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयमिति ?

अरुन्धती—अद्यैवागता वयम्।

जनकः—आर्य गृष्टे! अतीव मे कौतुकं वर्तते। तद् भगवन्तं
वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च बालकं ब्रूहि—वत्स!
केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव इति।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कौसल्या—किं मन्यध्व एवं भणित आगमिष्यतीति ?

जनकः—भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

कौसल्या—(निरूप्य) कथं सविनयं निशामित-गृष्टि-वचनो
विसर्जितर्षिदारक इतोऽभिमुखं प्रसृत एव स वत्सः।

जनकः—(चिरं निर्वर्ण्य) भोः! किमप्येतत्।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

महिम्नामेतस्मिन्विनय-शिशुता-मौग्ध्य-मसृणो
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः ।
मनो मे संमोहस्थिरमपि हरत्येष बलवा-
नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्त-शकलः ॥

लवः—(प्रविश्य) अज्ञातनामक्रमाभिजनान् पूज्यानपि स्वतः कथमभिवादयिष्ये ? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते । (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः ।

अरुन्धतीजनकौ—कल्याणिन् ! आयुष्मान्भूयाः ।

कौसल्या—जात ! चिरं जीव ।

अरुन्धती—एहि वत्स ! (लवमुत्सङ्गे गृहीत्वात्मगतम्) दिष्टया न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि सम्पूर्णः ।

कौसल्या—जात ! इतोऽपि तावदेहि । (उत्सङ्गे गृहीत्वा) अहो, न केवलं दर-विकसन्नीलोत्पल-श्यामलोज्ज्वलेन देहबन्धेन कवलितारविन्द-केसर-कषाय-कण्ठ-कलहंस-निनाददीर्घ-दीर्घेण स्वरेण च रामभद्रमनुहरति । ननु कठोर-कमल-गर्भ-पक्ष्मलः शरीर-स्पर्शोऽपि तादृश एव वत्सस्य । जात प्रेक्षे तावत् ते मुखपुण्डरीकम् । (चिबुकमुन्नमय्य निरूप्य सबाष्पाकूतम्) राजर्षे किं न प्रेक्षसे निपुणं निरूप्यमाण-मस्य मुखं वत्साया वध्वा मुखचन्द्रेण संवदत्येव ।

जनकः—पश्यामि, सखि ! पश्यामि ।

कौसल्या—अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं किमपीतोमुख विप्रलपति ।

जनकः—

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते,
सम्पूर्णप्रतिबिम्बितेव निखिला सेवाकृतिः सा द्युतिः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ
हा हा दैव ! किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति ।।

कौसल्या—जात ! अस्ति ते माता स्मरसि वा तातम् ?

लवः—नहि नहि ।

कौसल्या—ततः कस्य त्वम् ?

लवः—भगवतो वाल्मीकेः ।

कौसल्या—अयि जात ! कथयितव्यं कथय ।

लवः—एतावदेव जानामि ।

[नेपथ्ये]

भो भोः सैनिका ! एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या इति ।

अरुन्धतीजनकौ—अये ! मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गादुपागतो वत्सश्चन्द्रकेतुरद्य द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवसः ।

कौसल्या—वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते ।

लवः—आर्य ! क एष चन्द्रकेतुर्नाम ?

जनकः—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?

लवः—एतावेव रामायणकथापुरुषौ ।

जनकः—अथ किम् ।

लवः—तत्कथं न जानामि ।

जनकः—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः ।

लवः—ऊर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः ।

अरुन्धती—(विहस्य) आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन ।

जनकः—(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद्ब्रूहि तावत्पृच्छामस्तेषां दशरथात्मजानां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु केषु दारेषु प्रसूतानीति ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

लवः—नायं कथाप्रविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः ।

जनकः—किं न प्रणीत एव कविना ?

लवः—प्रणीतो न प्रकाशितः । तस्यैव कोऽप्येकदेशः सन्दर्भान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः । तं च स्वहस्त-लिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजद्भगवतो भरतस्य मुनेस्तौर्यत्रिक-सूत्रकारस्य ।

जनकः—किमर्थम् ?

लवः—स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति ।

जनकः—सर्वमिदमाकूतकरमस्माकम् ।

लवः—महती पुनस्तस्मिन् भगवतो वाल्मीकेरास्था । इतो येषामन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितं तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः प्रमादापनोदनार्थम् अस्मद्भ्राता प्रेषितः ।

कौसल्या—जात ! भ्राताऽपि तेऽस्ति ?

लवः—अस्त्यार्यः कुशो नाम ।

कौसल्या—ज्येष्ठ इति भणितं भवति ।

लवः—एवमेतत् । प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान् ।

जनकः—किं यमजावायुष्मन्तौ ?

लवः—अथ किम् ।

जनकः—वत्स ! कथय कथाप्रबन्धस्य कीदृशः पर्यन्तः ।

लवः—अलीक-पौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवयजन-संभवां सीतादेवीमासन्न-प्रसव-वेदनामेकाकिनीमरण्ये परित्यज्य प्रतिनिवृत्तो लक्ष्मण इति ।

कौसल्या—हा वत्से मुग्धचन्द्रमुखि! क इदानीं ते शरीर-कुसुमस्य झटिति दैव-दुर्विलास-परिणाम एकाकिन्या निपतितः ।

जनकः—हा वत्से !

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं
तां च व्यथां प्रसव-काल-कृतामवाप्य ।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽस्मि ।।

लवः—(अरुन्धतीं प्रति) आर्ये ! कावेतौ ?

अरुन्धती—इयं कौसल्या । अयं च जनकः ।

[लवः सबहुमानखेदकौतुकं पश्यति]

जनकः—अहो, निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम् । अहो रामस्य राज्ञः क्षिप्रकारिता ।

एतद्वैशस-वज्र-घोर-पतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः,
क्रोधस्य ज्वलितुं धगित्यवसरश्चापेन शापेन वा ।

कौसल्या—(सभयकम्पम्) भगवति ! परित्रायस्व परित्रायस्व । प्रसादय कुपितं राजर्षिम् ।

लवः—एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम् ।

अरुन्धती—राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जनाः ।

जनकः—

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्ड हि मे,
भूयिष्ठ-द्विज-बाल-वृद्ध-विकल-स्त्रैणश्च पौरो जनः ।।

[प्रविश्य]

सम्भ्रान्ता बटवः—कुमार ! कुमार ! अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते । सोऽयमधुनाऽस्माभिः प्रत्यक्षीकृतः ।

लवः—अश्व इति पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते । तद् ब्रूत कीदृशः ।

बटवः—श्रूयताम्—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रम्,
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्,
किं वाऽऽख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥

[इत्युपसृत्याजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति]

पश्यतु कुमारस्तदाश्चर्यम् ।

लवः—दृष्टमवगतं च । नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः ।

बटवः—कथं ज्ञायते ?

लवः—ननु मूर्खाः ! पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम् । किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः । तत्प्रायमेव बलमिदं दृश्यते । यदीह न प्रत्ययस्तद् गत्वा पृच्छत ।

बटवः—भो भोः ! किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति ?

लवः—(सस्पृहमात्मगतम्) अये ! अश्वमेध इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्र-परिभावी महानुत्कर्ष-निष्कर्षः ।

[नेपथ्ये]

अयमश्वः पताकेयमथवा वीर-घोषणा ।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठ-कुल-द्विषः ॥

लवः—(सगर्वमिव) अहो, संदीपनान्यक्षराणि !

बटवः—किमुच्यते । प्राज्ञः खलु कुमारः ।

लवः—भो भोः ! तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?

[नेपथ्ये]

अरे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

लवः—धिग्जाल्मान् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ।
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ।।

भो भो बटवः! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम् । एष रोहितानां मध्ये वराकश्चरतु ।

[प्रविश्य सक्रोधदर्पः]

पुरुषः—धिक्चापलं, किमुक्तवानसि ? तीक्ष्ण-नीरसा ह्यायुधीय-श्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्र-केतुररि-विमर्दनः । सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति तावत्त्वरितमनेन तरु-गहनेनापसर्पत ।

बटवः—कुमार ! कृतमनेनाश्वेन । तर्जयन्ति विस्फुरित-शस्त्राः कुमारमायुधीय-श्रेणयः । दूरे चाश्रमपदमितः । तदेहि हरिणप्लुतैः पलायामहे ।

लवः—(विहस्य) किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ?

[इति धनुरारोपयन्]

ज्या-जिह्वया वलयितोत्कट-कोटि-दंष्ट्र-
मुद्गारि-घोर-घन-घर्घर-घोषमेतत् ।
ग्रास-प्रसक्त-हसदन्तक-वक्त्र-यन्त्र-
जृम्भा-विडम्बि-विकटोदरमस्तु चापम् ।।

[इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे]

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रश्नाः

१. अधोनिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरस्सरं व्याख्येयानि—

(क) सुलभसौख्यं तावद्बालत्वं भवति ।

(ख) भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य ।

(ग) दिष्टया न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि सम्पूर्णः ।

(घ) आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन ।

(ङ) ज्येष्ठ इति भणितं भवति ।

(च) एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम् ।

(छ) अहो सन्दीपनान्यक्षराणि ।

(ज) तीक्ष्णनीरसा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते ।

२. एषामर्थं हिन्दीभाषया लिखत—

शिष्टानध्यायः, माञ्जिष्ठकम्, आश्रमाभ्यर्णभूमयः, क्रव्यादगणेषु, प्रवयसः, दिदृक्षवः, निषङ्गिणः, प्रत्ययः, ऊर्जस्वलः, पलायामहे, अनुयात्रिकः, तौर्यत्रिकसूत्रकारस्य, क्षिप्रकारिता, पुत्रभाण्डम् ।

३. ज्याजिह्वयेत्यादिपद्ये प्रयुक्तानां समस्तपदानां विग्रहं निर्दिशत ।

४. एषु वाच्यपरिवर्तनं कुरुत—

(क) तत्कथं न जानामि ।

(ख) आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन ।

(ग) अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेषु श्रूयते ।

(घ) अश्व इति पशुसमाम्नाये साङ्ग्रामिके च पठ्यते ।

५. एषु समासविग्रहौ ब्रूत—

सावष्टम्भमुग्धललितैः, विसर्जितर्षिदारकः, अक्षत्रिया, अपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयः ।

६. एतेषु प्रकृतिप्रत्ययप्रविभागं कुरुत—

रौरवीम्, निरूप्यमाणस्य, अभिव्यज्यते, अभिघ्नन्तः ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

७. कृतमनेनाश्वेन इत्यत्र तृतीया कथम् ?

८. अस्मिन्नाटयांशे लवस्य कीदृशं स्वरूपं वर्णितं जनकेन ?

९. लवस्य जनकादिवृद्धैः सह संलापः स्वमातृभाषया संक्षेपेण निर्दिशत ।

१०. 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यत' इत्युक्तेः सत्यतां प्रमाणीकुरुत ।

११. भवभूतिः कस्मिन्काले जातः, काश्च तस्य कृतयः ?

१२. बटुभिरश्वस्य कीदृशं वर्णनं कृतम् ? कथं च लवेन ज्ञातमाश्वमेधिकोऽयमिति ?

१३. पूर्वे क्षत्रियाः किमर्थमश्वमेधमाहरन्ति स्म ।

१४. जनकः किमर्थं कुपितः, कथं चारुन्धत्या प्रसादितः ?

१५. अस्य नाटयांशस्य कथावस्तु संक्षेपेण स्वशब्दैर्लिखत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नागानन्दम्

कवि-परिचय

नाटककार हर्षवर्धन अथवा हर्ष के विषय में विद्वानों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। भारतीय इतिहास में पांच हर्षों के विषय में उल्लेख पाया जाता है जैसे—काव्यप्रदीपकार गोविन्द ठाकुर के छोटे भाई श्रीहर्ष (१५वीं शताब्दी), नैषध महाकाव्य के रचयिता महाकवि हर्ष (१२वीं शताब्दी), काश्मीर-नरेश श्री हर्ष (११वीं-१२वीं शताब्दी) धारा-नरेश श्री हर्ष (१०वीं शताब्दी) स्थाण्वीश्वर (थानेसर) एवं कन्नौज के राजा श्री हर्षवर्धन (७वीं शताब्दी)। नाटककार के रूप में इनमें से अन्तिम राजा हर्षवर्धन का कर्तृत्व ही उचित जान पड़ता है। इनके सम्बन्ध में पाश्चात्य समीक्षकों का मत है कि एक सम्राट् जो इतना अच्छा शासक रहा हो वह अपने आपको साहित्य का व्यसनी बनाये रखे यह असम्भव सा प्रतीत होता है। इन समीक्षकों में कीथ प्रमुख हैं। परन्तु भारतीय इतिहास में ऐसा होना कुछ असम्भव नहीं। कुछ भारतीय आलोचकों का मत है कि महाराज हर्ष के यहाँ जो अन्य सभा-पण्डित रहे होंगे उनसे इन नाटकों का लेखन हुआ होगा और राजा ने उन्हें अपने नाम से प्रचलित कराया। काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने लिखा है "श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्"। कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ यही लिया है कि धावक नामक किसी कवि ने इन नाटकों की रचना की है। धावक के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ आलोचक धावक का अर्थ धोबी लेकर (भास को धोबी मान कर) भास को इनका कर्ता स्वीकार करते हैं जो सर्वथा एवं नितान्त असम्भव है। न तो इनमें भास जैसी भाषा है, न शैली और न ही उनके तेरह नाटकों जैसी समानता। इसके विपरीत कुछ अन्य आलोचक धावक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

को बाण के रूप में स्वीकार करते हैं। परन्तु बाण को नाटककार के रूप में हम इतिहास अथवा संस्कृत-साहित्य में कहीं पर भी नहीं देख पाते हैं। किञ्च बाण की भाषा, शैली एवं आलंकारिक वर्णनों का इनमें पूर्णतया अभाव है। बाण ने हर्ष को अपने आश्रयदाता के रूप में स्वीकार किया है और उसे कला एवं विद्याओं का मर्मज्ञ माना है। इन नाटकों का उल्लेख हमें धनञ्जय (१०वीं शताब्दी) के दशरूपक में, नागानन्द एवं रत्नावली का ध्वन्यालोक में (९वीं शताब्दी) तथा रत्नावली के एक सम्पूर्ण श्लोक का दामोदरगुप्त के कुट्टिनीमत में मिलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग (जो कि ६३० से ६४५ तक भारत में रहा) ने अपने यात्रा-वर्णन में हर्ष-कालीन राज्य-व्यवस्था एवं उसके राज्य-सम्बन्धी उपकरणों का पूरा-पूरा वर्णन किया है। इत्सिग (६७१-६९५) ने अपने यात्रा-वर्णन में हर्ष को नागानन्द का रचयिता माना है। जयदेव ने इन्हें कविताकामिनी का हर्ष कहा है। प्रियदर्शिका, रत्नावली एवं नागानन्द इन तीनों नाटकों की प्रस्तावना में समान रूप से हर्ष का ही उल्लेख प्राप्त होता है। हर्ष का राज्यकाल ६०६ से ६४८ ई० स्वीकृत किया जाता है अतः हर्ष को ७वीं शताब्दी के नाटककार के रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिये।

हर्ष थानेसर के राजा श्री प्रभाकरवर्धन के पुत्र थे। राज्यवर्धन इनके बड़े भाई थे और राज्यश्री इनकी बहिन थी। ६०४ ई० में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद राज्यवर्धन सिंहासनारूढ़ हुए। राज्यवर्धन ने अपने बहनोई कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा की हत्या करने वाले एवं बहिन राज्यश्री को बन्दी बनानेवाले मालव-नरेश पर आक्रमण किया। उसकी विजय हुई परन्तु मालव-नरेश के मित्र शशांक ने उसे धोखे से मार डाला। तब हर्षवर्धन ६०६ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए। इन्होंने कारागार से बचकर भागी हुई राज्यश्री की खोज की तथा उसे सुरक्षित कन्नौज पहुँचाया। कन्नौज की प्रजा के आग्रह पर इन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

६१२ ई० में दिग्विजय का कार्य सम्पन्न कर ६४७ ई० तक सुखपूर्वक राज्य किया।

हर्ष पर कालिदास की नाट्यकला का पर्याप्त प्रभाव है, परन्तु कवि ने अपने नाटकों को मौलिक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। इन्होंने नाट्य-शास्त्रीय सभी नियमों का पालन किया है। दशरूपककार धनंजय ने तो उदाहरण के रूप में रत्नावली से पर्याप्त उदाहरण ग्रहण किये हैं।

कथानक

विद्याधराधिप महाराज जीमूतकेतु राज्य का भार अपने पुत्र युवराज जीमूतवाहन को सौंपकर वन में चले जाते हैं। जीमूतवाहन भी मातृपितृ-भक्ति को जीवन का उद्देश्य मान मन्त्रियों को राज्य सौंपकर माता-पिता की सेवा के लिए वन के लिये प्रस्थान करते हैं। वन में विदूषक के साथ भ्रमण करते हुए जीमूतवाहन एक दिन भगवती गौरी के मन्दिर में आराधना करती हुई मलयवती के मुख से स्वप्न में गौरी द्वारा अपने-आपको उसे वर के रूप में प्रदत्त किये जाने की बात सुनते हैं और प्रथम दर्शन में ही उससे प्रणयसूत्र में बँध जाते हैं। कुछ समय पश्चात् एक दिन जीमूतवाहन मित्र विदूषक के साथ चन्दन-लता-गृह में बैठकर स्वप्न में अपनी प्रियतमा के कुपित होने की घटना सुना रहे हैं। वहाँ पर वे मलयवती का एक चित्र भी बनाते हैं। वहीं पर एकान्त में सखी के साथ बैठी हुई मलयवती इस घटना में अन्य स्त्री की आशंका से जीवन के प्रति निराश हो जाती है। उसी समय महाराज विश्वावसु के पुत्र, मलयवती के भाई मित्रावसु, जीमूतवाहन को खोजते हुए आते हैं। ये उनके साथ मलयवती के विवाह की बातचीत करते हैं। परन्तु जीमूतवाहन मलयवती को कोई अन्य कन्या जान विवाह से इनकार कर देते हैं। मलयवती की निराशा यहाँ तक बढ़ जाती है कि वह मित्रावसु के जाते ही पास के एक वृक्ष में, एकान्त में, फांसी का फंदा डाल कर आत्म-हत्या

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

का प्रयत्न करने लगती है। अकस्मात् उसकी सखी शोर मचा देती है। जीमूतवाहन उसे बचाते हैं और विश्वास के रूप में स्वनिर्मित चित्र भी दिखाते हैं। जीमूतवाहन के माता-पिता भी इस सम्वन्ध को स्वीकार कर लेते हैं और दोनों का विवाह हो जाता है।

एक दिन जीमूतवाहन मित्रावसु के साथ समुद्र-तट पर घूमते-घूमते साँपों की हड्डियों का ढेर देखकर एवञ्च गरुड़ द्वारा सर्पों के भक्षण की वात सुनकर सर्पों की रक्षा का विचार करने लगते हैं। सेवक द्वारा मित्रावसु के बुला लिये जाने पर जीमूतवाहन अकेले ही रह जाते हैं। वे सर्प शङ्खचूड के साथ आती हुई अपने एकमात्र पुत्र की मृत्यु से भयभीत माता का आर्त्तनाद सुनते हैं और शङ्खचूड के स्थान पर स्वयं अपने को भक्षणार्थ गरुड़ को अर्पण करने का प्रस्ताव रखते हैं। शङ्खचूड और उसकी माता इसे स्वीकार नहीं करते। तभी शङ्खचूड गोकर्ण की प्रदक्षिणा के लिए चला जाता है और विश्वावसु का कंचुकी परम्परानुसार जीमूतवाहन को रक्तवस्त्रयुगल अर्पित करता है। जीमूतवाहन का मनोरथ पूरा हो जाता है। उस वध्यचिह्न को पाकर वे वध्यशिला पर गरुड़ के सामने आहार स्वरूप अपने आपको प्रस्तुत कर देते हैं। अचानक लौटते हुए गरुड़ के पास जा रहे शङ्खचूड जीमूतवाहन के माता-पिता एवं पत्नी को पाकर सारी घटना सुनाते हैं। वह अत्यन्त क्षुब्ध होकर एक साथ अग्निदाह का प्रयत्न करने लगते हैं। गरुड़, शङ्खचूड से जीमूतवाहन की मृत्यु का समाचार सुन, अमृत लाने के लिए देवलोक चला जाता है। मलयवती की प्रार्थना सुन गौरी जीमूतवाहन को जीवित कर देती है तथा गरुड़ प्रायश्चित्त स्वरूप अमृत की वर्षा कर सारे सर्पों को जीवन-प्रदान कर देते हैं और सर्पों का वध न करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इस प्रकार नागों के आनन्द के साथ नाटक का सुखद अन्त होता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

[चतुर्थाऽङ्कात्]

[नेपथ्ये]

हा पुत्रक शङ्खचूड ! कथं व्यापाद्यमानोऽद्य किल त्वं मया प्रेक्षितव्यः ?

नायकः —(आकर्ण्य) अये ! योषित इवाऽऽर्त्तप्रलापः । केयम् ? कुतो वाऽस्याः भयमिति स्फुटीकरिष्ये ।

(परिक्रामति)

[ततः प्रविशति रुदत्या वृद्धयाऽनुगम्यमानः शङ्खचूडो, गोपायितवस्त्रयुगलश्च किङ्करः]

वृद्धा—(सास्रम्) हा पुत्रक शङ्खचूड ! कथं व्यापाद्यमानोऽद्य किल त्वं मया प्रेक्षितव्यः ? (चिबुकं गृहीत्वा) अनेन मुखचन्द्रेण विरहितमिदानीमन्धकारीभविष्यति पातालम् ।

शङ्खचूडः —अम्ब ! किमिति वैक्लव्येन सुतरां नः पीडयसि ?

वृद्धा—(निर्वर्ण्य, पुत्रस्याङ्गानि स्पृशन्ती) हा पुत्र ! कथं तेऽदृष्टसूर्य्यकिरणं सुकुमारं शरीरं निर्घृणहृदयो गरुड आहारयिष्यति ? (कण्ठे गृहीत्वा रोदिति)

शङ्खचूडः —अम्ब ! अलं परिदेवितेन । पश्य—

क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात्तदा शोकस्य कः क्रमः ।।

[गन्तुमिच्छति]

वृद्धा—पुत्र ! तिष्ठ मुहूर्त्तं, यावत्ते वदनं पश्यामि ।

किङ्करः—एहि कुमार शङ्खचूड ! किं ते एतया भणन्त्या ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पुत्रस्नेहमोहिता खल्वेषा न जानाति राजकार्यम् ।

शङ्खचूडः —अयमागच्छामि ।

किङ्करः —(अग्रतोऽवलोक्याऽऽत्मगतम्) आनीतः खल्वेष मया वध्यशिलासमीपे, तद्वध्यचिह्नं दास्यामि ।

नायकः —इयमसौ योषित् (शङ्खचूडं दृष्ट्वा) नूनमनेन अस्याः सुतेन भवितव्यम् । तत् किमाक्रन्दति ? (समन्तादवलोक्य) न खल्वस्या भयकारणं किञ्चित् पश्यामि । कुतोऽस्या भयमिति ? यावदुपसर्पामि । प्रसक्त एवायमेतेषा-मालापः । कदाचिदत एवास्याभिव्यक्तिर्भविष्यति । तद्विटपान्तरितस्तावच्छृणोमि । (तथा करोति)

किङ्करः—(सास्रं कृताञ्जलिः) कुमार शङ्खचूड ! 'एष स्वामिन आदेश' इति कृत्वा ईदृशं निष्ठुरं मन्त्र्यते ।

शङ्खचूडः—भद्र ! कथय ।

किङ्करः —नागराजो वासुकिराज्ञापयति ।

शङ्खचूडः —(शिरस्यञ्जलिं बद्ध्वा सादरम्) किमाज्ञापयति देवः ?

किङ्करः —'इदं रक्तांशुकयुगलं परिधाय आरोह वध्यशिलां, येन रक्तांशुकमुपलक्ष्य गरुड आहारयिष्यति' इति ।

नायकः —(श्रुत्वा) कथमसौ वासुकिना परित्यक्तः ?

किङ्करः —कुमार ! गृहाणैतद्वसनयुगलम् ।

[इत्यर्पयति]

शङ्खचूडः —(सादरम्) उपनय । (गृहीत्वा) शिरसि स्वाम्यादेशः ।

वृद्धा—(पुत्रस्य हस्ते वाससी दृष्ट्वा सोरस्ताडम्) हा वत्स ! इदं खलु वज्रपातसन्निभं सम्भाव्यते ।

[मोहं गता]

किङ्करः —आसन्ना गरुडस्याऽऽगमनवेला,' तल्लघु गच्छामि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

[इति निष्क्रान्तः]

शङ्खचूडः —अम्ब ! समाश्वसिहि ।
वृद्धा—(समाश्वस्य, सास्रम्) हा पुत्रक ! हा मनोरथशतलब्ध ! क्व पुनस्त्वां प्रेक्षिष्ये ?

[कण्ठे गृह्णाति]

नायकः —अहो नैर्घृण्यं गरुडस्य ! अपि च—

मूढाया मुहुरश्रुसन्ततिमुचः कृत्वा प्रलापान् बहून्,
'कस्त्राता तव पुत्रके'ति कृपणं दिक्षु क्षिपन्त्या दृशम् ।
अङ्के मातुरवस्थितं शिशुमिमं त्यक्त्वा घृणामश्नत-
श्चञ्चुर्नैव खगाधिपस्य, हृदयं वज्रेण मन्ये कृतम् ।।

शङ्खचूडः —(आत्मनोऽश्रूणि निवारयन्) अम्ब ! किमतिवैक्लव्येन ?

यैरत्यन्तदयापरैर्न विहिता वन्ध्यार्थिनां प्रार्थना,
यैः कारुण्यपरिग्रहान्न गणितः स्वार्थः परार्थं प्रति ।
ये नित्यं परदुःखदुःखितधियस्ते साधवोऽस्तं गता,
मातः ! संहर बाष्पवेगमधुना कस्याग्रतो रुद्यते ? ।।

ननु समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

वृद्धा—(सास्रम्) कथं समाश्वसिष्यामि ? किमेकपुत्रक इति कृत्वा सानुकम्पेन नागराजेन प्रेषितोऽसि ? हा ! कथमविच्छिन्ने जीवलोके मम पुत्रकः स्मृतः ? सर्वथाऽहमस्मि मन्दभाग्या । (मूर्च्छति)

नायकः —(सकरुणम्)

आर्त्तं कण्ठगतप्राणं, परित्यक्तं स्वबन्धुभिः ।
त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ? ।।

तद्यावदुपसर्पामि ।

शङ्खचूडः —अम्ब ! संस्तम्भयाऽऽत्मानम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वृद्धा—हा पुत्रक ! यदा नागलोकपरिरक्षकेन वासुकिना परित्यक्तोऽसि, तदा कस्तेऽपरः परित्राणं करिष्यति ?

नायकः—(उपसृत्य) नन्वहम् ।

वृद्धा—(नायकं दृष्ट्वा ससम्भ्रममुत्तरीयेण पुत्रकमाच्छाद्य नायकमुपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा) विनतानन्दन ! व्यापादय माम्, अहं ते नागराजेनाऽऽहारनिमित्तं परिकल्पिता ।

नायकः—(सास्रम्) अहो ! पुत्रवात्सल्यम् !

अस्या विलोक्य मन्ये पुत्रस्नेहेन विक्लवत्वमिदम् ।
अकरुणहृदयः करुणां कुर्वीत भुजङ्गशत्रुरपि ।।

शङ्खचूडः—अम्ब ! अलं त्रासेन । न नागशत्रुः । पश्य—

महाहि-मस्तिष्क-विभेद-मुक्त-रक्तच्छटा-चर्च्चित-चण्डचञ्चुः ।
क्वासौ गरुत्मान्? क्व च नाम सौम्यस्वभावरूपाकृतिरेषसाधुः ।।

वृद्धा—अहं खलु तव मरणभीता सर्वमेव लोकं गरुडमयं पश्यामि ।

नायकः—अम्ब ! मा भैषीः नन्वयमहं विद्याधरस्त्वत्सुतसंरक्षणार्थमेवायातः ।

वृद्धा—(सहर्षम्) पुत्रक ! पुनः पुनरेवं भण ।

नायकः—अम्ब ! किं पुनः पुनरभिहितेन । ननु कर्मणैव सम्पादयामि ।

वृद्धा—(शिरस्यञ्जलिं बद्ध्वा) पुत्रक ! चिरं जीव ।

नायकः—

ममैतदम्बाऽर्पय वध्यचिह्नं,
प्रावृत्य यावद्विनताऽऽत्मजाय ।
पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय,
स्वदेहमाहारयितुं ददामि ।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

वृद्धा—(कर्णौं पिधाय) प्रतिहतममङ्गलम् । त्वमपि शङ्खचूडनिर्विशेषः पुत्रः । अथवा शङ्खचूडादप्यधिकतरः, य एवं बन्धुजनपरित्यक्तमपि पुत्रकं मे शरीरप्रदानेन रक्षितुमिच्छसि ।

शङ्खचूडः—अहो ! जगद्विपरीतमस्य महासत्त्वस्य चरितम् । कुतः—

विश्वामित्रः श्वमांसं श्वपच इव पुराऽभक्षयद्यन्निमित्तं,
नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन ।
पुत्रोऽयं काश्यपस्य प्रतिदिनमुरगानत्ति तार्क्ष्यो यदर्थं,
प्राणांस्तानेव साधुस्तृणमिव कृपया यः परार्थं ददाति ॥

(नायकमुद्दिश्य) भो महासत्त्व ! त्वया दर्शितैवाऽऽत्मप्रदानव्यवसायान्निर्व्याजा मयि कृपालुता । तदलमनेन निर्बन्धेन । पश्य—

जायन्ते च म्रियन्ते च मादृशाः क्षुद्रजन्तवः ।
परार्थे बद्धकक्षाणां त्वादृशामुद्भवः कुतः ? ॥

तत् किमनेन निर्बन्धेन ? मुच्यतामयमध्यवसायः ।

नायकः—शङ्खचूड ! न मे चिराल्लब्धावसरस्य परार्थसम्पादनमनोरथस्यान्तरायं कर्त्तुमर्हसि । तदलं विकल्पेन । दीयतामेतद्वध्यचिह्नम् ।

शङ्खचूडः—भो महासत्त्व ! किमनेन वृथाऽऽत्मायासेन ! न खलु शङ्खधवलं शङ्खपालकुलं शङ्खचूडो मलिनीकरिष्यति । यदि ते वयमनुकम्पनीयास्तदियमस्मद्विपत्तिविक्लवा न यथा जीवितं जह्यात्तथाऽभ्युपायश्चिन्त्यताम् ।

नायकः—किमत्र चिन्त्यते ? चिन्तित एवाऽभ्युपायः । स तु त्वदायत्तः ।

शङ्खचूडः—कथमिव ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

नायकः —

म्रियते म्रियमाण या त्वयि जीवति जीवति ।
तां यदीच्छसि जीवन्तीं रक्षाऽऽत्मानं ममाऽसुभिः ॥

अयमभ्युपायः । तदर्पय त्वरितं वध्यचिह्नं, यावदनेनाऽऽत्मानं प्रच्छाद्य वध्यशिलामारोहामि । त्वमपि जननीं पुरस्कृत्याऽस्माद्देशान्निवर्त्तस्व । कदाचिदम्बाऽवलोक्य सन्निकृष्टं घातस्थानं स्त्रीस्वभाव-कातरत्वेन जीवितं जह्यात् । किं न पश्यति भवानिदं विपन्न-पन्नगाऽनेक-कङ्काल-सङ्कुलं महाश्मशानम् ? तथा हि—

चञ्चच्चञ्चूद्धृतार्द्धच्युतपिशितलवग्राससंवृद्धगर्द्धैर्-
गृध्रैरारब्धपक्षद्वितयविधुतिभिर्बद्धसान्द्रान्धकारे ।
वक्त्रोद्वान्ताः पतन्त्यश्छमिति शिखिशिखाश्रेणयोऽस्मिञ्छिवानाम्-
अस्रस्रोतस्यजस्रस्रुतबहलवसावासविस्रे स्वनन्ति ॥

शङ्खचूडः—कथं न पश्यामि ?

प्रतिदिनमहिनाऽऽहारेण विनायकाऽऽहितप्रीति ।
शशिधवलाऽस्थिकपालं वपुरिव रौद्रं श्मशानमिदम् ॥

नायकः—शङ्खचूड ! तद्गच्छ किमेभिः सामोपन्यासैः ।

शङ्खचूडः —आसन्नः खलु गरुडस्याऽऽगमनसमयः । (मातुरग्रतो जानुभ्यां स्थित्वा) अम्ब ! त्वमपि निवर्त्तस्वेदानीम् ।

समुत्पत्स्यामहे मातर्यस्यां यस्यां गतौ वयम् ।
तस्यां तस्यां प्रियसुते ! माता भूयास्त्वमेव नः ॥

[पादयोः पतति]

वृद्धा—(सास्रम्) कथमस्य पश्चिमं वचनम् ? पुत्रक ! न खलु त्वामुज्झित्वा मे पादावन्यतो वहतस्तदिहैव त्वया सह स्थास्यामि ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

शङ्खचूडः —(उत्थाय) यावदहमप्यदूरे भगवन्तं दक्षिणगोकर्णं प्रदक्षिणीकृत्य स्वाम्यादेशमनुतिष्ठामि ।

[उभौ निष्क्रान्तौ]

प्रश्नाः

१. अधोनिर्दिष्टानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरःसरं व्याख्येयानि—
   (क) किमिति वैक्लव्येन सुतरां नः पीडयसि ?
   (ख) इदं खलु वज्रपातसन्निभं सम्भाव्यते ।
   (ग) अहो नैर्घृण्यं गरुडस्य ।
   (घ) किं पुनः पुनरभिहितेन । ननु कर्मणैव सम्पादयामि ।
   (ङ) जगद्विपरीतमस्य महासत्त्वस्य चरितम् ।
   (च) तद् गच्छ, किमेभिः सामोपन्यासैः ।

२. जायन्ते च म्रियन्ते च मादृशाः क्षुद्रजन्तवः ।
   परार्थे बद्धकक्षाणां त्वादृशामुद्भवः कुतः ॥
   —पद्यस्यास्याभिप्रायः स्वशब्दैराविष्क्रियताम् ।

३. 'नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन' इत्यत्र का नाम पुराणकथा सङ्केतिता नाटचकृता ?

४. नायकः केनाऽभ्युपायेन शङ्खचूडस्य रक्षां कर्तुमिच्छति ?

५. नायकस्य शङ्खचूडस्य च संवादं संक्षेपेण स्वशब्दैर्लिखत ।

६. शङ्खचूडमातुर्विलापः किं हेतुकः ?

७. नागानन्दस्य प्रणेता कः ? कास्तस्यान्याः कृतयः ?

८. अत्र नाटचांशे वर्णितं महाश्मशानं स्वगिरा वर्णयत ।

९. नाट्यस्यास्य कथावस्तु संक्षेपेण निर्दिशत ।

१०. एतेषामर्थं मातृभाषया लिखत—
    परिदेवितेन, अश्नतः, अविच्छिन्ने, प्रावृत्य, जह्यात् ।

११. चञ्चच्चञ्चूद्धृतादिपद्ये समस्तपदानां समासविग्रहौ प्रदर्शयत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रसन्नकाश्यपम्

कवि-परिचय

कौशिक गोत्र के प्रसिद्ध पण्डितपरिवार के जग्गू वकुलभूषण दक्षिण भारत के मैसूर राज्य के मेलकोटे नामक स्थान के निवासी हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों में इनका मूर्धन्य स्थान है। अब तक २७ के लगभग ग्रन्थों की इन्होंने रचना की है। साहित्य की सभी शैलियों में इनकी समान गति है। इनके ग्रंथों में जयन्तिका और यदुवंशचरित जैसे कादम्बरी और हर्षचरित की शैली पर लिखे गये ग्रंथ भी हैं और करुणरसतरंगिणी जैसे महाकाव्य भी। इन्होंने कुल मिलाकर १४ नाटकों की रचना की है जिनमें यौवराज्य एकाङ्की है और बलि-विजय, अमूल्य-माल और अप्रतिम-प्रतिम द्व्यङ्क हैं। शेष सब तीन या तीन से अधिक अङ्कों के हैं। प्रसन्नकाश्यप, जिसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, भी तीन अङ्कों का है। प्राचीन संस्कृत नाटकों के पूर्वभाग या उत्तरभाग रूप अनेक नाटक कवि ने रचे हैं। इनका अद्भुतांशुक वेणीसंहार का पूर्वभाग है, वीरसौभद्र दूतघटोत्कच का पूर्वभाग है, प्रतिज्ञाकौटिल्य मुद्राराक्षस का पूर्वभाग है, प्रसन्नकाश्यप अभिज्ञान-शाकुन्तल का उत्तरभाग है एवं मणिहरण ऊरुभङ्ग का उत्तरभाग है। कविप्रतिभाप्रसूत ये पूर्व या उत्तरभाग बहुत रोचक हैं। मूल नाटकों की कहानी कैसे आगे बढ़ी होगी, क्या कुछ नवीन हुआ होगा इसके प्रति पाठक की उत्सुकता स्वाभाविक ही है। पुराने स्थान, स्थितियों और चरित्रों को कवि ने कैसे नये परिवेश में ढाला यह पाठक का चित्त बर-बस आकर्षित करता है और सुखद अनुभूति प्रदान करता है।

नाटककार की शैली सरल एवं प्रवाहमयी है। उद्धृत सन्दर्भ में

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

हास्यरस का पुट पर्याप्त है। नाटक में श्लोक बहुत कम हैं। गद्य की ही प्रधानता है। कथोपकथन सजीव एवं सरस हैं।

कथानक

दुष्यन्त, पत्नी शकुन्तला और पुत्र भरत के साथ, कण्वाश्रम को पुनः देखने की इच्छा से वहाँ जाते हैं। सबसे पहिले शकुन्तला आश्रम में प्रवेश करती है। वर्षों के व्यवधान से आश्रम में बहुत कुछ बदल चुका है। शकुन्तला की सखियां—अनसूया और प्रियंवदा—भी विवाहित हो चुकी हैं। उनके पति हैं—ऋषिकुमार शारद्वत और शार्ङ्गरव। अनसूया तो पुत्रवती भी है। शकुन्तला इन सबसे मिलती है। इसके पश्चात् वह गौतमी के दर्शन करती है। शकुन्तला के दुःख और काल-प्रभाव से वह जर्जर हो चुकी है। काफ़ी देर तक वह शकुन्तला से बातें करती रहती है। इसके पश्चात् राजा, शकुन्तला और भरत आश्रमवासियों के साथ महर्षि कण्व (काश्यप) के दर्शनों को जाते हैं। राजा को भय है कि कहीं महर्षि उससे पूर्वकृत शकुन्तला के परित्याग को स्मरण कर रुष्ट न हों पर महर्षि सारी परिस्थिति को जान चुके होते हैं। उन्हें दुष्यन्त पर कोई क्रोध नहीं है। उनका चित्त प्रसन्न है। प्रसन्नकाश्यप (कण्व) के दर्शन से राजा को बहुत सान्त्वना मिलती है। महर्षि उसे एक दिन आश्रम में रहकर राजधानी लौटने को कहते हैं। राजा महर्षि का आदेश शिरोधार्य कर लेते हैं और यहीं नाटक की परिसमाप्ति हो जाती है।

(प्रथमाऽङ्कात्)

[नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः]

सूत्रधारः—(सविनयम्) एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि,

नानानाटकनिर्माता यः कोविदमुदावहः।
स एवास्यापि कर्ता हि जग्गूवकुलभूषणः॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनैकताने शब्द इव श्रूयते ?
पश्यामि तावत् (परिक्रम्य) आं, ज्ञातं—
सदारस्सकुमारश्च कण्वाश्रमदिदृक्षया ।
आयाति स्यन्दनेनासौ दुष्यन्तः कौतुकी वनम् ॥

[निष्क्रान्तः]

[स्थापना]

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा]

राजा—प्रिये ! सन्निहितं शचीतीर्थमुपस्पृश्य यास्यामः ।
शकुन्तला—मा गच्छत्वार्यपुत्रः, अस्माकं स्नेहं विघटयिष्यति ।
राजा—(सस्मितम्) किमिदं, कातरेव ? अप्रमत्तास्तावदधुना तीर्थमुपस्पृशामः, (रथादवरुह्य) किन्नु खलु, अद्यापि चिरयति माढव्यः ?
भरतः—अम्ब ! स पाषाणशकलैर्मर्कटकुलं भीषयन्दूरे वर्तते ।
राजा—(सस्मितम्) सोपि बुद्ध्या सजातीय एव ।

[ततः प्रविशति वृद्धकञ्चुकिद्वितीयो रथेन विदूषकः]

विदूषकः—वत्स भरत ! एहि तावद् दर्शनीयं दर्शयामि ।
भरतः—(रथादवरुह्य) किं तद्दर्शय । (उपसर्पति)
विदूषकः—पश्य । (चेलाञ्चलनिबद्धान्भेकार्भकान्दर्शयति)
भरतः—किमेतदेव ? मुञ्च मुञ्च ।
राजा—वयस्य ! शचीतीर्थमिदम् उपस्पृशामः,

[सर्वे शक्रावतारेणावतीर्य तीर्थमुपस्पृशन्ति]

शिशिरशीकरवीचिपरम्परा-
परिहृतामितवर्त्मपरिश्रमाः ।
ननु कृता वयमम्बुजलोचने,
कथमिदं समुपालभसे सरः ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

शकुन्तला—अनेन पूर्वमङ्गुलीयकमपहृतम्, इदानीमार्यपुत्रस्य सन्निधानात्परिश्रमोऽपहृतः ।

विदूषकः—यत्किञ्चिदपहरणव्यग्रेणानेन चौरेण भवितव्यम् ।

भरतः—(सहस्ततालम्) ही ही अत्र कथमाहिण्डते मत्स्यसमूहः । एकं गृहाण ।

विदूषकः—मा खलु मा खलु गिलति ममाप्यङ्गुलीयकम् ।

[सर्वे रथमधिरोहन्ति]

विदूषकः—एहि वत्स ! मम रथम् । अन्यद्दर्शयामि ।

भरतः—पश्याम्ब ! आर्य आकारयति ।

शकुन्तला—गच्छ, तस्य रथेन आयाहि ।

भरतः—त्वं त्वरितं रथेन पुरतो गमिष्यसि, तस्मात्तस्य रथं न गमिष्यामि ।

शकुन्तला—तर्हि एहि । (स्वाङ्कमारोपयति) सूतो वाहान्प्रेरयति ।

विदूषकः—वयस्य ! परिचित इवैष देशः ।

राजा—अथ किं, अयमाश्रमपर्यन्तप्रदेशः

सान्द्रप्ररूढवृक्षो विकीर्णभोग्यप्रसूननिकरश्च ।
स्वयमाश्रमोपकण्ठो वितनोत्यातिथ्यमतिथिसङ्घाय ।।

शकुन्तला—(सानुनयम्) आर्यपुत्र ! अहमेकाकिनी आश्रमं प्रविश्यातर्कितागमनेन सन्तोषयिष्यामि सखीजनम् ।

राजा—भवत्येव प्रथममनुभवतु स्निग्धजनप्रथमदर्शनानन्दम् । वयं तु तपोवनोद्देशविलोकनेन विनोदितमानसा यावदनन्तरं प्रविशामः । सारथे ! रथ्यान्विगतश्रमान्कुरु । एते हि,

खरकिरणखरातपातितप्ताः,
श्रमजलमृष्टनिसर्गगात्रवर्णाः ।
मुखगलदवदातफेनपिण्डाः,
द्रुतपृथुलोच्छ्वसनैर्वदन्ति खेदम् ।।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

[सर्वे रथादवतरन्ति] [सूतः रथेन निष्क्रान्तः]

राजा—पारिभद्र ! फलकुसुमभाजनमादाय देवीमनुव्रज, वयस्य ! कथं भवान् ?

विदूषकः —(स्वशिरः परामृशन्) सन्निहिता मध्याह्नवेला, भोजनं, नहि, नहि, भानुवन्दनं कर्त्तव्यम् ।

राजा—(सस्मितम्) मास्तु कथाविस्तरः ।

विदूषकः —कुत्र गन्तुकामस्त्वम् ?

राजा—उक्तं हि ।

विदूषकः —गच्छतु भवान्, अहं देवीमनुगच्छामि ।

राजा—यथा रोचते भवते । (परिक्रामति)

विदूषकः —तिष्ठ तिष्ठ महाब्राह्मणोऽहम्, अनुरूपेण सम्मानेन प्रवेशनीयः, तस्मात्तवैवानन्तरमाश्रमं प्रवेक्ष्यामि ।

राजा—तथा (माढव्येन निष्क्रान्तः) ।

कञ्चुकी—(भरतमादाय फलकुसुमपाणिः) इत इतो देवी, इदमाश्रमपदम् ।

शकुन्तला—(सविस्मयम्) चिराद् दृष्ट आश्रमोऽन्य इव, किन्तु खलु न कोऽपि ।

कञ्चुकी—पश्यतु देवी, पर्णशालाजिरे कोऽपि बालकः हरिणपोतेन क्रीडन्नास्ते ।

शकुन्तला—(सानन्दम्) कस्यैषः । (परिक्रामति)

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो बालकः]

बालकः —गृहीतोऽसि, इदानीं किं करोषि, अत्र नहि तवाम्बा, इदानीं किं करोषि ? (बलात्तन्मुखं गृहीत्वा चुम्बति)

शकुन्तला—(उपसृत्य) जात ! कस्त्वम् ?

बालकः —ममाम्बायाः पुत्रकः ।

शकुन्तला—(समन्दस्मितम्) तवाम्बाया नामधेयं किम् ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

बालकः —ममाम्बेति ।

[शकुन्तला—वालकमादाय परिचुम्वति]

[भरतः—अवतीर्य हरिणपोतं गृह्णाति]

बालकः —हूं मम हरिणपोतकः । (वेष्टमानो वलादवस्रंसनेनावतीर्यं तिष्ठति)

कञ्चुकी—अहो बालस्योक्तिर्निसर्गरमणीया, एवं किल सर्वत्र ।

भरतः —(वालकमुपसृत्य) आवयोर्द्वयोरप्येषः ।

बालकः —कस्त्वं ?

भरतः—शकुन्तलायाः पुत्रकः ।

बालकः —का शकुन्तला ?

भरतः —(सहासम्) अहो, त्वं न जानासि शकुन्तलाम्, पश्य । (अंगुल्या दर्शयति)

बालकः —(शकुन्तलां विलोक्य) किं त्वमेव शकुन्तला ?

कञ्चुकी—रमणीयस्संलापः ।

शकुन्तला—(सस्मितम्) अहं तवाम्बा ।

बालकः —नहि त्वं ममाम्बा । (भरतमुपसृत्य) देहि पोतकम् ।

भरतः —(सधाष्ट्र्यम्) पश्याम्ब !

शकुन्तला—जात ! दापयामि, कथय, कुत्र तवाम्बा ?

भरतः —(सशिरश्चालनम्) न खल्वहं ददामि ।

बालकः —(भरतमनुसृत्य) ममाम्बा फलमानीय ददाति, तेऽपि ददामि, एनं देहि ।

शकुन्तला—(सप्रेम) अहमेव ते फलं ददामि । (कञ्चुकिहस्तादेकं फलमादाय ददाति)

बालकः —मम हरिणपोतकायार्धं विभज । (निर्यातयितुमिच्छति)

शकुन्तला—(सवैलक्ष्यं) तस्मायन्यद्ददामि । एतत्त्वं खाद ।

भरतः —क्रीडावः, आयाहि । (वालकमाकर्षति)

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

बालकः —(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) हं ममाम्बा तीर्थं गृहीत्वा गच्छति ।

शकुन्तला—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कैषा, छायया अनसूयेव ।

बालकः —अनसूया नहि, ममाम्बा ।

[ततः प्रविशति वामकटिसमारोपिततीर्थकलशा अनसूया]

अनसूया—(शकुन्तलां विलोक्य सवैलक्ष्यं) किन्नु खलु ? (स्तम्भीभूय तिष्ठति)

शकुन्तला—(सगम्भीरमन्दस्मितम्) अहम् ।

अनसूया—(बाष्पाविलमक्षि विस्तार्य) हला प्रियवदे ! कुत्रासि ?

शकुन्तला—कुत्र सा ?

अनसूया—कथं, शकुन्तलेव । (ससम्भ्रमं निष्क्रान्ता)

बालकः —(सदैन्यम्) अम्ब ! मम हरिणपोतकमेष गृह्णाति । (निष्क्रान्तः)

शकुन्तला—आश्चर्यं, प्रेम नाम किं वा न करोति, (नेपथ्ये) कुत्र ? अपि नाम सत्यम् ?

[ततः प्रविशत्यनसूया प्रियंवदया सह]

अनसूया—किमसत्यं कथयामि ?

[प्रियंवदा—विलोक्य विवर्णवदना निर्निमेषा तिष्ठति]

शकुन्तला—(सगद्गदम्) किन्नु खलु, कैषा ?

प्रियंवदा—(सबाष्पम्) मन्दभागिन्यहमेवं प्रष्टव्या संवृत्ता ? (शकुन्तलायाः कण्ठमाश्लिष्य तदंसदेशे मुखं निवेश्य बाष्पमुत्सृजति)

शकुन्तला—हला अनसूये ! एहि तावत्, त्वमपि कण्ठग्रहेण मामानन्दय, (अनसूयामालिंग्य चेलांचलेन प्रियंवदाया बाष्पं प्रमार्ष्टि)

प्रियंवदा—आर्यस्य मारीचस्य छात्रेण गालवेन पूर्वंभणितं,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

सुखप्रसूतपुत्रका शकुन्तला दुष्यन्तेन सङ्गतेति । आश्चर्यं, तदाङ्गुलीयकमपि तव प्रतिकूल संवृत्तं, ततः पुनरपि कथमिव तव समागमो जातः ?

शकुन्तला—(दीर्घं निःश्वस्य) तत्र भणितव्यं बहु वर्तते, अनन्तरं सविस्तरं कथयिष्यामि, कुत्रास्माकं तातकाश्यपः, आर्या गौतमी च कुत्र ?

प्रियंवदा—तातकाश्यपो मध्याह्नकरणीयं कर्म कर्तुं मालिनीं गतः । आर्या गौतमी पुनः प्रचलितुमप्यसमर्था अभ्यन्तरे वर्तते ।

शकुन्तला—तर्हि, अभ्यन्तरमेव गत्वा तस्यै आर्यायै प्रणामं करिष्यामि ।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वाः]

प्रश्नाः

१. अधोलिखितानि वाक्यानि प्रकरणनिर्देशपुरस्सरं व्याख्येयानि—

(क) सोऽपि बुद्ध्या सजातीय एव ।

(ख) मा खलु मा खलु गिलति ममाप्यङ्गुलीयकम् ।

(ग) माऽस्तु कथाविस्तरः ।

(घ) रमणीयस्संलापः ।

(ङ) आश्चर्यम्, प्रेम नाम किं वा न करोति ?

(च) मन्दभागिन्यहमेवं प्रष्टव्या संवृत्ता ।

२. अस्य नाट्यांशस्य कथावस्तु संक्षेपेण स्वशब्दैर्निरूपयत ।

३. अस्मिन्नाट्यांशे को मुख्यो रसः ?

४. भरतस्यानसूयासुतस्य च संवादं स्वमातृभाषया लिखत ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

५. शकुन्तलादुष्यन्तौ किमिति पुनरपि कण्वाश्रमं गतौ ?

६. दुष्यन्तेन आश्रमपर्यन्तप्रदेशः कैश्चिह्नैः परिज्ञातः ?

७. शकुन्तला किमित्येकाकिन्याश्रमं प्रवेष्टुमिच्छति ?

८. शकुन्तलायाः प्रियंवदयाऽनसूयया च सह समागमेन कीदृशोऽनुभवः ?

९. एतेषां प्रकृतिप्रत्ययप्रविभागं प्रदर्शयत—
भीषयन्, रथ्यान्, प्रवेक्ष्यामि, दापयामि, प्रमार्ष्टि ।

१०. दरकिरणखरातपेत्यादिपद्ये प्रयुक्तानां समासानां विग्रहः प्रदर्श्यः ।

११. अर्वाचीनसंस्कृतरूपकविषये किं ज्ञायते भवद्भिः ? किमद्यत्वेऽपि संस्कृतरूपकाण्यभिनीयन्ते ?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

शब्दार्थाः व्याकरणञ्च

मध्यमव्यायोगः

भ्रुकुटिपुट—भवें ।

पिङ्गल—भूरी ।

सतडित्—विजली सहित—तडिता सह, वहुव्रीहि समास ।

सविमर्शा—सोच-विचार वाली । विमर्शेन सहिता, वहुव्रीहि समास ।

नियोगात्—आज्ञा से ।

अपनीय—छोड़कर । अप + √नी + क्त्वा > ल्यप् ।

अप्रमादेन—सावधानी से ।

विक्रोशामः—चिल्लाएँ, आवाज़ दें ।

तिमिर—अन्धकार ।

उत्कर—समूह ।

सन्त्रासः—डर ।

नातिदूरेण—निकट से ।

युद्धप्रियाः—जिन्हें युद्ध प्रिय है । युद्धं प्रियं येषाम्, वहुव्रीहि समास ।

शरणागतवत्सलाः—शरणागतप्रिय, शरणम् आगताः शरणागताः, द्वितीया तत्पुरुष समास । शरणागतानां वत्सलाः, षष्ठीतत्पुरुष समास ।

कृतसाहसाः —साहसी । कृतं साहसं यैः ते, बहुव्रीहि समास ।

यथार्हम्—यथायोग्य ।

अनुभवितुम्—भाग लेने के लिए । अनु + √भू + तुमुन् ।

स्थापितः —छोड़ गये हैं । √स्था + णिच् + क्त ।

सन्निहिताः —निकट हैं । विद्यमान हैं । सम् + नि + √धा + क्त प्रथमा वहु० ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

व्यपाश्रयिष्ये—प्रार्थना करूँगा।

द्विपुत्रः—दो पुत्रों सहित। द्वौ पुत्रौ यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

अब्राह्मणः—ब्राह्मण से भिन्न। न ब्राह्मणः, नञ् तत्पुरुष समास।

श्रुतवान्—शास्त्रज्ञ। श्रुतमस्य अस्ति, श्रुत+मतुप् प्रत्यय।

पुरुषादः—मानव को खाने वाला। पुरुषम् अत्ति, उपपद तत्पुरुष समास।

निर्वृतिम्—शान्ति, सुख।

सकुटुम्बः—कुटुम्बेन सहितः, बहुव्रीहि समास।

जर्जरम्—पुराना, जीर्ण।

सुतापेक्षी—पुत्र के लिए। सुतम् अपेक्षते, उपपद तत्पुरुष।

विधिसंस्कृतम्—विधिपूर्वक। विधिना संस्कृतम्। तत्पुरुष समास।

अभिमतः—पसन्द है।

अपसर—जाओ।

गुरुवृत्ति—बड़प्पन।

पितृसमः—पिता के समान। पित्रा समः, तृतीया तत्पुरुष समास।

तार्यते—बचाया जाता है। √तॄ+णिच्+कर्मवाच्य लट् प्र० पु० एक०।

इष्टतमम्—सबसे प्रिय।

विनिमाय—बदले में दे कर।

परिष्वजस्व—गले लगो।

परिष्वक्तः—युक्त।

प्रकल्पितपरलोकस्य—परलोक निश्चित होने पर। मृत्यु के लिए निश्चित। प्रकल्पितः परलोकः यस्य तस्य, बहुव्रीहि समास।

पिपासा—प्यास।

प्रतिकार—उपाय, शान्ति।

रुष्यति—गुस्से होते हो।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

किंनामा—क्या नाम है। किम् नाम यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

विरुते—आवाज़ (वाले)।

विरौति—चिल्ला रहा है।

मनोज्वरम्—मानसिक व्यथा। मनसो ज्वरम्, षष्ठी तत्पुरुष समास।

धनञ्जय—अर्जुन।

शब्दापयामि—आवाज़ देता हूँ। शब्द इस शब्द से नामधातु।

संप्रोक्ते—बुलाने पर।

पद्मपत्रोज्ज्वलम्—कमल पत्र के समान निर्मल। पद्मस्य पत्रम् पद्मपत्रम्, तत्पुरुष समास। पद्मपत्रमिव उज्ज्वलम्, कर्मधारय समास।

दीर्घायुः—चिरंजीव। दीर्घम् आयुः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

अधिष्ठितपूर्वे—पहले रहे हुए। पूर्वम् अधिष्ठितम्=अधिष्ठितपूर्वम्, सुप्सुपा समास, तस्मिन्।

वास्तव्यः—निवासी। वसतीति। कर्तरि तव्यत् प्रत्यय।

अरिष्टः—कल्याणप्रद।

जलद—बादल।

मृगपति—शेर।

प्रोग्रदंष्ट्रः—बड़े बड़े दाँतों वाला।

विगतशङ्कः—निर्भय। विगता शंका यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

निग्रहीष्यामि—पकड़ूँगा, दण्ड दूँगा।

अपराध्यसि—तंग करते हो, विरोध करते हो।

विप्रचन्द्रस्य—ब्राह्मण रूपी चन्द्रमा। विप्रः एव चन्द्रः तस्य, कर्मधारय समास।

गुणतस्करः—गुणों को हरने वाला। गुणानां तस्करः, मयूर व्यंसक आदि समास।

बालशौण्डीर्यम्—बालक की वीरता। शुण्डीरस्य भावः शौण्डीर्यम्।

सौभद्रस्य—अभिमन्यु की।

विस्रब्धम्—विश्वास से। शौक़ से। वि+√स्रम्भ्+क्त।

शुश्रूषुः—सेवक।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

पुरस्कृत्य—मान कर (अक्षरार्थं=आगे रख कर।)

सनाथा—साथ, नाथेन सहिता, बहुव्रीहि समास ।

वीतकारुण्यम्—निर्दय, वीतं कारुण्यं यस्य तत्, बहुव्रीहि समास ।

रूपगुणोपेतः—रूप एवं गुण सम्पन्न । रूपं च गुणाः च रूपगुणाः, द्वन्द्व समास । रूपगुणैः उपेतः, रूपगुणोपेतः, तत्पुरुष समास ।

तस्माच्छरीरेण—तस्मात्+शरीरेण ।

विनिमातुम्—बदले में देने के लिये ।

प्रत्यभिजानीते—पहचानते हो । प्रति+अभि+√ज्ञा+लट् प्रथम पुरुष एक० । प्रत्यभिजानाति यह शुद्ध रूप होगा ।

अभिधीयन्ते—कही जाती हैं ।

आयुधम्—शस्त्र ।

काञ्चन—सोना ।

विश्वकर्ता—ब्रह्मा ।

अनृतम्—झूठ ।

गिरिकूट—पहाड़ की चोटी ।

वन्यः कुञ्जरः—जंगली हाथी ।

घर्षयेत्—हरा सकता है ।

नभस्वतः—वायु का ।

सुसन्नद्धः—तैयार (होकर) ।

मत्समः—मेरे समान । मया समः, तत्पुरुष समास ।

अवहितः—सावधान । अव+धा+क्त प्र० एक० ।

नियुद्धबन्धान्—मल्लयुद्ध के बन्धनों को ।

अवधूय—तोड़ कर ।

दृष्टसारः—शक्ति पता लग गई है जिसकी । दृष्टः सारः यस्य सः, बहुव्रीहि समास ।

मातृप्रसाद—माता का आशीर्वाद ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

राजसे—अच्छा लगते हो ।

महेश्वरः —शंकर।

वृकोदरः —भीम।

स्थविरः —बूढ़ा।

उन्मत्तक—पागल।

भ्रष्टराज्यानाम्—राज्य से भ्रष्ट। भ्रष्टं राज्यं येषां तेषाम्, बहुव्रीहि समास।

जातकारुण्यया—दयालु ने।

धार्तराष्ट्र—धृतराष्ट्र के पुत्र।

दवाग्नि—जंगल की आग।

पुत्रचापलम्—पुत्र का दोष, पुत्र की शरारत।

पुत्रापेक्षीणि—पुत्र को चाहने वाले। पुत्रम् अपेक्षन्ते यानि तानि, उपपद तत्पुरुष समास।

अदूरतः —निकट ही।

सम्भावयिष्यामः —साथ देखकर सत्कार करेंगे।

प्रभवः —जन्मदाता।

विक्रमोर्वशीयम्

तालवृन्त—पंखा।

आमिष —मांस।

असमाप्तनेपथ्यः—वस्त्र पूरी तरह बदले बिना। न समाप्तम्-असमाप्तम्, नञ् तत्पुरुष समास। असमाप्तं नेपथ्यं यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

आहर्ता—लाने वाला—आ+हृ+तृच्।

विहगतस्करः—चोर पंछी (गृध्र)। विहगश्च असौ तस्करश्च इति विहगतस्करः, कर्मधारय समास।

स्तेय—चोरी।

कोटि—चोंच।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

आलिखन्—कुरेदता हुआ। आ+लिख्+शतृ।

आलम्बित—लटकते हुए।

अलातचक्र—किसी जलती हुई लकड़ी आदि के चारों ओर घुमाने से बनने वाला आग का चक्कर।

वलय—गोल चक्र।

तनोति—बनाता है।

घृणा—दया।

शासनीयः—दण्ड देने योग्य है।

कुणप—शव।

अवतंसक—कर्णभूषण।

शरासनम्—धनुष।

क्रव्यभोजनः—मांसभक्षी (गीध)।

पतत्रिणा—पक्षी से।

नक्तम्—रात में।

विचीयताम्—ढूंढ़ा जाय।

कुम्भीरक—चोर।

विहङ्गम—पक्षी।

संगमितः—मिलाया गया था। सम्+गम्+णिच्+क्त।

निर्भिन्नतनुः—कटे शरीर वाला। निर्भिन्ना तनुः यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

मार्गण—बाण।

समौलिरत्नः—सिर एवं रत्न सहित। मौलिः च रत्नं च मौलिरत्ने, द्वन्द्व, मौलिरत्नाभ्यां सहितः, बहुव्रीहि समास।

आर्द्रम्—गीला।

पेटक—पेटी, पिटारी

वर्णविचारक्षमा—अक्षरों को पहचानने वाली।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अनुवाच्य—पढ़ कर।

प्रहर्तुः—मारने वाले का।

अविलम्बित—शीघ्र।

अर्धनाराचः—आधा वाण।

बाष्पायते—आंसुओं से पूर्ण हो रही है। वाष्प शब्द से नामधातु प्र० पु० एक०।

वात्सल्यबन्धि—प्रेमपूर्ण।

वेपथुः—कम्पन।

उज्झित—छोड़ा हुआ।

अदयम्—निर्ममता से, जोर से।

परिरब्धुम्—गले लगाने के लिए।

अनाख्यात—विना वताया हुआ।

उत्संगवर्धितानाम्—गोद में पले। उत्संगेषु वर्धितानाम्, सप्तमी तत्पुरुष।

न्यासीकृतः—धरोहर के रूप में दिया गया।

अशेषम्—सम्पूर्ण।

गृहीतविद्यः -विद्या पढ़ कर। गृहीता विद्या येन सः, वहुव्रीहि समास।

समिद्—समिधा, हवन की लकड़ी।

गृहीतामिषः—मांस लिये हुए। गृहीतम् आमिषं येन सः, वहुव्रीहि समास।

लक्षीकृतः—निशाना वनाया गया।

निर्यातय—लौटा दो।

सर्वाङ्गीणः—सब अंगों को व्यापने वाला।

आह्लादयस्व—आह्लादित करो।

चन्द्रकरः—चन्द्रमा की किरण।

चन्द्रकान्त—एक विशेष प्रकार का मणि जो कि चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने लगता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अशंकितः—निडर होकर ।

शाखामृगः—बन्दर ।

सबाणासनः—धनुर्धारी ।

संयम्यमानः—बांधे जाते हुए ।

निर्यातितः—लौटा दी गई है ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

अभूमिः —अस्थान ।

अविनयस्य—अशिष्टाचार की । विनयः=संयम, साध्वाचार ।

शब्दानुसारेण—ध्वनि का पीछा करते हुए ।

अनुबध्यमानः—पीछा किया हुआ ।

अबालसत्त्वः—जिसकी शक्ति बच्चों की सी नहीं ।

आमर्दक्लिष्टकेसरम्—मसलने से जिसके गर्दन के वाल बिखर गये हैं ।

विप्रकरोषि—तंग करते हो । वि प्र पूर्वक कृ का ऐसा अर्थ होता है, जैसे हम 'विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते' इस वाक्य में देखते हैं ।

संरम्भः —वेग, जोश ।

कृतनामधेयः —जिसका नाम रखा गया । नामन् शब्द से स्वार्थ में धेय प्रत्यय आता है ।

लङ्घयिष्यति—आक्रमण करेगी ।

वत्सलयति—प्यार से भरा बनाती है । वत्सलं करोति 'वत्स' से लच् प्रत्यय है । फिर णिच् ।

चक्रवर्ती—चक्रं वर्तयतीति ।

प्रणयः—पुं० चाह, इच्छा, प्रार्थना ।

अलक्ष्यपत्रान्तरम्—जिसकी पाँखुड़ियों के बीच में अवकाश नहीं दीखता । अन्तर (नपुं०)=अवकाश ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

इद्धरागया—(वि०) दीप्त (चमकती हुई) लाली वाली (उषा ने)।

उषसा—उषा ने। कालवाची उषस् नपुंसकलिङ्ग होता है और देवतावाचक स्त्री०। यहां कवि ने काल में देवत्व का आरोप करके स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग किया है।

वाचामात्रेण—केवल वाणी से। भागुरि आचार्य के मत में हलन्त शब्दों से भी स्त्रीप्रत्यय टाप् आ जाता है जिससे वाचा, निशा, दिशा आदि शब्द साधु माने जाते हैं। मात्र शब्द यहाँ अवधारण अर्थ में है। वाचा मात्रम् का विग्रह 'वाचा एव' यही होगा।

स्पृहयामि—चाहता हूँ। इस धातु के प्रयोग में जो स्पृहा का विषय है उससे चतुर्थी विभक्ति आती है। जैसे 'दुर्ललिताय' में आई है। दुर्ललित=बहुत लाड़ला।

आलक्ष्यदन्तमुकुलान्—कुछ-कुछ दीखते हुए मुकुल (अधखिली कली) सदृश दाँतों वाले (बच्चों को)।

अव्यक्तवर्ण०—अस्पष्ट अक्षरों के कारण चित्त को रिझाने वाली वाणी के प्रवाह वाले (बच्चों को)।

दुर्मोचहस्तग्रहेण—न छूटने वाली हाथ की पकड़ से।

दुर्मोच—खल् प्रत्ययान्त है।

कृतिनः—धन्य (पुरुष) का। कृतमनेन इति। इनिः।

वामशीलः—टेढ़े स्वभाव वाला।

अप्रतिलोमः—अनुकूल।

रूपसंवादिनी—रूप में मिलती-जुलती। रूपेण संवदितुं शीलमस्या इति।

व्यपदेशः—कुल। व्यपदिश्यतेऽनेन इति।

उशन्ति—चाहते हैं। वश् अदा० प०।

नियतैकयतिव्रतानि—(वि०) जहाँ नियम रूप से एकमात्र यति-व्रत का पालन होता है।

नामतः पृच्छामि—नाम से पूछता हूँ। तसि प्रत्ययः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

मणिबन्धे—कलाई पर।

विक्रिया—विकार।

अभिनन्दामि—स्वागत करता हूँ, (उस पर) प्रसन्न होता हूँ। अभि-पूर्वक नन्द् धातु सकर्मक है, केवल नन्द् भ्वा० प० अकर्मक है।

नियमव्यापृतायै—तपस्या में लगी हुई (शकुन्तला को)।

मुद्राराक्षसम्

आदाय—(लेकर), आ उपसर्ग दा धातु + क्त्वा > ल्यप्।

सबाष्पम्—(रोते हुए) वाष्पेण सहितम्, बहुव्रीहि समास।

चारित्रभंगभीरूणाम्—(चरित्र दोष से डरने वाले) चारित्रस्य भंगः चारित्रभङ्गः, षष्ठीतत्पुरुष समास, तस्माद् भीरवः चारित्रभङ्गभीरवः पञ्चमीतत्पुरुष समास, तेषाम्।

चौरजनोचितम्—चौरों के समान। चौरजनस्य उचितम्, तत्पुरुष समास।

नृशंसानाम्—क्रूरों का।

कृतान्तः—यमराज।

आमिषाणि—मांस।

मुक्त्वा—छोड़कर, मुच् + क्त्वा।

मुग्धहरिणम्—भोले हरिण को। मुग्धः हरिणः। तम्। कर्मधारय समास।

निर्बन्धः—आग्रह।

समन्तात्—चारों ओर।

प्रतिवचनम्—उत्तर।

न प्रतिपद्यसे—नहीं दे रहे हो।

कृतनिवापसलिला—जलाञ्जलि करने वाले, निवापस्य सलिलम् निवापसलिलम्, षष्ठी तत्पुरुष समास। कृतम् (दत्तम्) निवापसलिलं यया सा, बहुव्रीहि समास।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रतिनिवर्तमानाः—लौटते हुए । प्रति+नि+वृत्+शानच्, प्रथमा वहु० ।

शोकदीनवदनाः—शोक से व्याकुल मुख वाले । शोकेन दीनं वदनं येषां ते, वहुव्रीहि समास ।

बाष्पगुर्व्या—अश्रुपूर्ण । बाष्पैः गुर्वी बाष्पगुर्वी तया, तृतीया तत्पुरुष समास ।

विसर्जय—भेज दो । वि उपसर्ग सृज् धातु+णिच् लोट् मध्यम पु० एक० ।

परिजनम्—दासवर्ग को ।

निवर्तस्व—लौट जाओ ।

सपुत्रा—पुत्रेण पुत्रैः वा सहिता, कुटुम्बिनी का विशेषण, वहुव्रीहि समास ।

प्रस्थितः—जा रहे हो । प्र+स्था धातु+क्त प्रत्यय ।

पुरुषदोषेण—पुरुष के दोष से, व्यक्ति के अपराध से । पुरुषस्य दोषेण, षष्ठी तत्पुरुष समास ।

विषादः—दुःख ।

व्यवसितम्—विचार किया, निश्चय किया ।

अनुगच्छन्त्या—अनुसरण करते हुए । अनु+गम्+शतृ प्रत्यय स्त्री० तृतीया एक० ।

अनुग्रहीतव्यः—दया करनी चाहिए । अनु+ग्रह्+तव्य प्रत्यय, प्र० एकवचन ।

पत—गिर, नमस्कार कर, लोट् म० पु० एक० ।

तातविरहितेन—पिता जी से बिछुड़े हुए ।

निखातः—गाड़ दिया गया । नि उपसर्ग+खन् धातु+क्त प्रत्यय ।

परित्रायध्वम्—बचाओ । परि+त्रा+लोट् मध्यम पु० वहु० ।

अयुक्तकार्येण—अनुचित अपराध से । अयुक्तेन कार्येण अयुक्तकार्येण,

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

कर्मधारय समास । न युक्तमिति अयुक्तम्, नञ् तत्पुरुष समास ।

सान्त्वयामि—सान्त्वना देता हूँ ।

समुद्वहमानः—पूरा करता हुआ । सम्+उद्+वह्+शानच्, प्र० एक० ।

पटाक्षेपेण—पर्दा हटाकर । एक नाटकीय पारिभाषिक शब्द जो पात्र के अकस्मात् प्रवेश की सूचना देता है ।

न भेतव्यम्—मत डरो । भी धातु+तव्य प्रत्यय ।

शूलायतनाः—फांसी देने वाले चाण्डाल । शूलम् एव आयतनं येषां ते, बहुव्रीहि समास ।

न व्यापादयितव्यः—मत मारो । वि+आ+√पद्+णिच्+तव्य प्रत्यय ।

स्वामिकुलम्—स्वामी का वंश । स्वामिनः कुलम्, षष्ठी तत्पुरुष समास ।

विनश्यत्—नष्ट होते हुए । वि+√नश्+शतृ प्रत्यय नपुं० प्र० एकवचन ।

वध्यस्रक्—फांसी की माला । वध्यस्य स्रक्, षष्ठी तत्पुरुष समास ।

आबध्यताम्—पहना दो । आ (ङ्) उपसर्ग, बध् धातु कर्मवाच्य लोट् लकार प्रथम पुरुष एक० ।

प्रयासम्—प्रयत्न को ।

कुर्वता—करते हुए । √कृ+शतृ पुं० तृतीया एक० ।

अनुष्ठितम्—कर दिया । अनु+√स्था+क्त प्रत्यय नपुं० ।

दुरात्मने—दुष्ट, दुष्टः आत्मा यस्य सः तस्मै, बहुव्रीहि समास ।

असज्जनरुचौ—दुष्टों के लिए रुचिकर । न सज्जनाः, असज्जनाः, नञ् तत्पुरुष समास, असज्जनानाम् अस्ति रुचिः यस्मिन् स तस्मिन्, बहुव्रीहि समास ।

यशस्विना—यशस्वी से । यशस् शब्द से मतुप् (वाला) अर्थ में विन् प्रत्यय तृतीया एक० ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

औशीनरीयम्—उशीनरस्य अयम् इति औशीनरः=राजा शिवि। औशीनरस्येदम् इति औशीनरीयम् औशीनर+छ (ईय)।

चेष्टितम्—इच्छा, चेष्टा। चेष्ट धातु+क्त प्रत्यय, नपुं प्र० एक०।

विशुद्धात्मना—स्वच्छ आत्मा वाले ने। विशुद्धः आत्मा यस्य सः तेन, बहुव्रीहि समास।

पूजार्हः—पूज्य। पूजाम् अर्हति, उपपद समास।

सपुत्रदारेण—पुत्र एवं स्त्री समेत। पुत्रेण दारैः च सहितः सपुत्रदारः, बहुव्रीहि समास, तेन। चन्दनदास का विशेषण।

अविच्छिन्ने—नष्ट होने से पूर्व। न विच्छिन्नम् अविच्छिन्नम् नञ् तत्पुरुष समास, तस्मिन्।

मन्दभाग्या—भाग्यहीन। मन्दं (अल्पम्) भाग्यं यस्याः सा, बहुव्रीहि समास।

मृच्छकटिकम्

मृच्छकटिकम्—मृदः शकटिका। मिट्टी की गाड़ी। अभेदोपचार से प्रकरण को मृच्छकटिकम् कहा है। प्रकरण वाच्य होने से नपुंसक लिङ्ग हुआ है।

सनिर्वेदम्—दुःखी होकर। निर्वेदेन सह, अव्ययीभाव समास।

ऋद्ध्या—समृद्धि से, सम्पत्ति से।

सुवर्णशकटिकया—सोने की गाड़ी से। सुवर्णस्य शकटिका, षष्ठी तत्पुरुष समास, तया।

विनोदयामि—प्रसन्न करती हूँ। वि+√नुद्+णिच्+लट् प्रथम पुरुष एक०।

उपसर्पिष्यामि—पास जाऊँगी। उप+सृप्, लृट् उ० पु० एक०। उपसप्र्स्यामि पाणिनि व्याकरण के अनुसार शुद्ध रूप होगा।

अनलंकृतशरीरः—आभूषणहीन शरीर वाला। न अलंकृतम् अनलङ्कृतम्, नञ् तत्पुरुष, अनलंकृतं शरीरम् यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

चन्द्रमुखः—चाँद के समान मुखड़े वाला। चन्द्रमिव मुखं यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

प्रसार्य—फैलाकर। प्र+सृ+णिच्+ल्यप्।

उपवेश्य—बिठाकर। उप+विश्+णिच्+क्त्वा > ल्यप्।

पितू रूपम्—पितुः+रूपम्=पिता का रूप।

प्रतिवेशिक—पड़ौसी।

सन्तप्यते—दुःखी हो रहा है। सम्+√तप्+कर्मवाच्य लट प्रथम पुरुष एक०।

पुष्कर—कमल।

मा रुदिहि—मत रो। रुद् धातु लोट् म० पु० एक०।

गुणनिर्जिता—गुणों से वशीभूत। गुणैः निर्जिता, षष्ठी तत्पुरुष-समास।

अलीकम्—झूठ।

अलंकृता—गहनों वाली। अलम्+कृ+क्त, स्त्री० प्र० पु० एक०।

आभरणानि—आभूषण, गहने।

रुदती—रोते हुए।

अपेहि—चल हट। अप+इहि, लोट् मध्यम पुरुष एक०।

प्रमृज्य—पोंछ कर। प्र+√मृज्+क्त्वा > ल्यप्।

पूरयित्वा—भर कर। पॄ धातु णिच्+क्त्वा।

कारय—बनवा लो, कृ धातु णिच् लोट् मध्यम पुरुष एक०।

उत्तररामचरितम्

आकर्णयन्ति—सुनते हैं।

शिष्टानध्यायः—बड़े लोगों के (आने के) कारण अवकाश, शिष्टकृतः अनध्यायः, मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास।

उद्धतम्—उच्छृङ्खलता के साथ, निश्चिन्तता पूर्वक, आनन्द से। उत्+√हन्+क्त, क्रियाविशेषण।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

खेलताम्—खेलते हुओं का । √खेल्+शतृ षष्ठी बहुवचन ।

सावष्टम्भ—अक्षरार्थ—आश्रयभूत । वीरराघव के अनुसार राम के शैशव के आश्रयभूत, अन्य टीकाकारों के अनुसार सौष्ठव युक्त ।

शीतलयति—शीतलता, ठंडक, पहुँचा रहा है । शीतलं करोति, शीतलयति । शीतल शब्द से नामधातु रूप ।

अपवार्य—मुख मोड़कर । नाटकीय अभिनय सम्बन्धी निर्देश ।

भागीरथी—गंगा, भगीरथ राजा द्वारा तप के प्रभाव से गंगा पृथ्वी पर लाई गई थी ।

कर्णामृतम्—कानों के लिए अमृत । वह बात जो सुनने से हृदय को प्रसन्न करती है । कर्णयोः अमृतमिव, षष्ठी तत्पुरुष समास ।

विद्मः—जान पा रहे हैं । विद् धातु लट् उत्तम पुरुष बहु० ।

कतरः—किम् शब्द से तर प्रत्यय । दोनों में से कौन सा (एक) ।

कुवलय—नीलकमल ।

स्निग्ध—लाक्षणिक प्रयोग, अर्थ है सुन्दर ।

शिखण्डक—काकपक्ष ।

बटुपरिषदम्—ब्रह्मचारियों (आश्रम के छोटे-छोटे बालकों) की सभा को । बटूनां परिषद् >बटुपरिषद् ताम्, तत्पुरुष समास ।

पुण्यश्रीकः—सुन्दर शोभा सम्पन्न । पुण्या श्रीः यस्य सः, बहुव्रीहि समास ।

सभाजयन्—(स्वागत करते हुए) प्राप्त करता हुआ ।

झटिति—झट से ।

चूडा—चोटी ।

कङ्कपत्रम्—बाण का अग्र भाग ।

तूणीद्वय—दो तरकश ।

स्तोक—थोड़ा ।

उरः—वक्षस्थल ।

रौरवीम्—रुरु नामक हरिण की । रुरोः इयम् >रौरवी, ताम् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

रुरु+अण् प्रत्यय ।

कार्मुकम्—धनुष ।

उत्प्रेक्षसे—समझती हो, अनुमान लगाती हो । उत्+प्र+√ईक्ष् लट् मध्यम पुरुष एकवचन ।

प्रवयसः —वृद्ध (बुजुर्ग) ।

दिदृक्षवः —देखना चाहते हैं । √दृश्+सन्+उ, दिदृक्षु, प्रथमा बहु० ।

निशमित—सुना है ।

मौग्ध्य—भोलापन । मुग्ध शब्द+भाववाचक ष्यञ् ।

विदग्धैः —चतुर, समझदारों ने ।

निर्ग्राह्यः —जानने योग्य, ज्ञेय ।

अयोधातुम्—लोहे को ।

अयस्कान्तशकलः—चुम्बक का टुकड़ा ।

अभिजन—कुल ।

अविरुद्धः—उचित । न विरुद्धः, नञ् तत्पुरुष समास ।

पर्यायः—क्रम ।

दर—थोड़ा, अल्प ।

कवलित—निगले हुए ।

निनाद—स्वर ।

अनुहरति—अनुसरण करता है ।

चिबुकम्—ठोढ़ी ।

उन्नमय—ऊपर उठाओ ।

आकूत—अभिप्राय ।

संवदति—अनुकरण करता है ।

वत्सायाः —बेटी का (सीता) ।

शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते—शिशौ+अस्मिन्+अभिव्यज्यते ।

अभिव्यज्यते—प्रकट है । अभि+वि+√अञ्ज्+कर्मवाच्य लट्

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रथम पुरुष एक० ।

सहजः—स्वाभाविक ।

पुण्यानुभावः—पवित्र प्रभाव । पुण्यः चासौ अनुभावः च । कर्मधारय समास ।

पारिप्लवम्—चंचलता । क्रियाविशेषण ।

अभ्यर्ण—निकट ।

मेध्याश्व—पवित्र घोड़ा, अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा ।

सुदिवसः—अच्छा दिन । शोभनः चासौ दिवसः च, कर्मधारय समास ।

श्रूयन्ते—सुनाई दे रहे हैं । √श्रु+कर्मवाच्य लट् प्रथमपुरुष बहु० ।

रामलक्ष्मणौ—राम और लक्ष्मण । रामः च लक्ष्मणः च, द्वन्द्व समास ।

दाशरथी—दशरथ के पुत्र ।

दौहित्रः—धेवता, लड़की का लड़का । दुहितुः अपत्यम्, दुहितृ+अण् प्रत्यय ।

कियन्ति—कितने ।

श्रुतपूर्वः—पहले सुना है । पूर्वं श्रुतः श्रुतपूर्वः, सुप्सुपा समास ।

रसवान्—रसयुक्त, रसोऽस्यास्ति, रस+मतुप्, पुंल्लिग, प्रथमपुरुष एक० ।

व्यसृजत्—भेजा है, वि+√सृज् लङ् लकार प्रथम पुरुष एक० ।

प्रयोजयिष्यति—अभिनय करायेंगे । प्र+√युज्+णिच्+लृट् प्रथमपुरुष एकवचन ।

आकूतकरम्—उत्सुकताप्रद ।

आस्था—श्रद्धा ।

चापपाणिः—धनुर्धारी । चापं पाणौ यस्य सः, बहुव्रीहि समास ।

प्रमादापनोदनार्थम्—विघ्नों को हटाने के लिए ।

ज्यायान्—दो में से बड़ा । वृद्ध शब्द+ईयस् प्रत्यय, प्रथमा एक० ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

यमजौ—जुड़वाँ।

अलीक—झूठ, मिथ्या।

दैवदुर्विलास—दुर्भाग्य।

अवाप्य—पाकर। अव+√आप्+क्त्वा>ल्यप्।

क्रव्याद्—कच्चा मांस खाने वाले गीध आदि। क्रव्यम् अत्ति, उपपद तत्पुरुष समास।

असकृत्—पुनः-पुनः, बार-बार।

क्षिप्रकारिता—जल्दबाज़ी। शीघ्र कार्य करना।

वैशस—हिंसा।

पुत्रभाण्डम्—प्रशस्त पुत्र।

भूयिष्ठ—अत्यधिक, बहु+इष्ठन्।

स्त्रैणः—स्त्रियों का समूह। स्त्री+नञ्।

कवचिनः —कवच पहने हुए। कवचाः सन्त्येषामिति। 'अत इनि ठनौ' इस सूत्र से मत्वर्थीय इन् (इनि) प्रत्यय।

निषङ्गिणः —तरकस वाले।

किंप्रयोजनाः —किसलिए। किं प्रयोजनमस्यास्तीति, बहुव्रीहि समास।

सप्तलोकैकवीरस्य—सप्तलोकेषु एको वीर इति सप्तलोकैकवीरः, तस्य। सातों लोकों में एकमात्र वीर।

दशकण्ठकुलद्विषः —दशकण्ठस्य कुलम् द्वेष्टि इति दशकण्ठकुलद्विट्, तस्य दशकण्ठकुलद्विषः। रावण के वंश के शत्रु का।

सन्दीपनानि—आग लगाने वाले।

महाराजं प्रति—"लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः" इस सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने पर "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इस सूत्र से द्वितीया हुई।

जाल्मान्—दुष्टों को। जाल्म संस्कृत में गाली होती थी।

धिग्जाल्मान्—"उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽ

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

म्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इस कारिका से धिक् के योग में द्वितीया हुई।

रोहितानाम्—हरिणों के।

आयुधश्रेणयः—शस्त्रों की पंक्तियाँ।

दृप्ताम्—घमण्ड से भरी हुई को।

दूरे चाश्रमपदम्—"सप्तम्यधिकरणे च" इस सूत्र से सप्तमी हुई।

हरिणप्लुतैः—हिरन के जैसी कुलाँचे भरते हुए।

पलायामहे—भाग जाते हैं। परा+अय्। उ० पु० बहु०। 'उपसर्गस्यायतौ' इस सूत्र से उपसर्ग परा के र् को ल् हो गया।

विस्फुरन्ति—फड़क रहे हैं, चमक रहे हैं।

ज्याजिह्वया—प्रत्यञ्चारूपी जिह्वा से। ज्या एव जिह्वा तया।

जृम्भाविडम्बि—जम्हाई का अनुकरण करने वाला। जृम्भां विडम्बते इति। अर्थात् बहुत खुला हुआ।

विकटोदरम्—जिसका मध्य-भाग विकट है। विकटमुदरं यस्य। उदर का अर्थ पेट है। यह लाक्षणिक प्रयोग है। यहाँ इसका अर्थ मध्य भाग है।

नागानन्दम्

व्यापाद्यमानः—वध किये जाते हुए, वि उपसर्ग+आ उपसर्ग+√पद+णिच्+कर्मवाच्य शानच् प्रत्यय, प्र० एक०।

आकर्ण्य—सुनकर।

योषितः—स्त्री का, योषित् शब्द षष्ठी एक०।

आर्त्त-प्रलापः—दुःख भरी आवाज़, आर्त्तः प्रलापः इति आर्तप्रलापः, कर्मधारय समास।

रुदत्या—रोती हुई ने, रुद् धातु+शतृ प्रत्यय स्त्रीलिंग तृतीया एक०।

अनुगम्यमानः—पीछा किया जाता हुआ, अनु उपसर्ग गम् धातु कर्मवाच्य शानच् प्रत्यय।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

किङ्करः—सेवक ।

साश्रम्—रोते हुए, अश्रैः सहितम्, बहुव्रीहि समास । क्रि० वि० ।

प्रेक्षितव्यः—देखा जायेगा, प्र उपसर्ग ईक्ष् धातु, तव्य प्रत्यय ।

चिबुकम्—ठोड़ी ।

वैक्लव्येन—दुःख से, विक्लवस्य भावः वैक्लव्यम्, तेन । ष्यञ् प्रत्यय ।

सुतराम्—अत्यधिक ।

नः—हमारा, अस्मद् शब्द का द्वितीया, चतुर्थी एवं षष्ठी में पद से परे आने वाला रूप ।

स्पृशन्ती—छूती हुई, स्पृश् धातु+शतृ प्रत्यय (स्त्रीलिंग) ।

सुकुमारम्—कोमल ।

निर्घृणहृदयः—कठोर, निर्घृणं हृदयं यस्य सः, बहुव्रीहि समास ।

परिदेवितेन—विलाप से ।

क्रोडीकरोति—अपना लेती है । क्रोड+च्वि+कृ धातु लट् प्रथम पुरुष एक० ।

जातम्—पैदा हुए प्राणी को ।

भणन्त्या—कहती हुई ने, भण् धातु+शतृ प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग ।

पुत्रस्नेहमोहिता—पुत्र के स्नेह से भरी, पुत्रस्य स्नेहः पुत्रस्नेहः, षष्ठी तत्पुरुष समास, तेन मोहिता, तृतीया तत्पुरुष समास ।

वध्यशिला—फाँसी का स्थान ।

भवितव्यम्—होनहार, भू धातु+तव्य प्रत्यय ।

आक्रन्दति—चिल्ला रही है, रो रही है ।

आलापः—बातचीत ।

अभिव्यक्तिः—पता लगना । अभि उपसर्ग+वि उपसर्ग+अञ्ज् धातु+क्तिन् प्रत्यय ।

अन्तरितः—छुपकर ।

निष्ठुरम्—(क्रिया विशेषण) कठोरता से ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अञ्जलिं बद्ध्वा—हाथ जोड़कर।

परिधाय—पहनकर, परि+धा धातु+क्त्वा>ल्यप् प्रत्यय।

आरोह—चढ़ो, आ उपसर्ग रुह् धातु लोट् मध्यम पुरुष एक०।

रक्तांशुकम्—लाल कपड़ा, रक्तम् अंशुकम्, कर्मधारय समास।

उपलक्ष्य—देखकर।

श्रुत्वा—सुनकर, श्रु धातु+क्त्वा प्रत्यय।

परित्यक्तः—छोड़ दिया गया, परि उपसर्ग त्यज् धातु+क्त प्रत्यय प्र० एक०।

गृहाण—ले लो, ग्रह् धातु लोट् मध्यम पुरुष एक०।

गृहीत्वा—लेकर, ग्रह् धातु क्त्वा प्रत्यय।

वाससी—दो कपड़े, वासस् शब्द द्वितीया द्विवचन।

सोरस्ताडम्—छाती पीट कर, उरस्ताडेन सह, अव्ययीभाव समास।

वज्रपातसन्निभम्—बिजली टूटने या गिरने के समान।

सम्भाव्यते—सम्भव है, सम् उपसर्ग भू धातु+णिच्+कर्मवाच्य लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

आसन्ना—पास में, आ+√सद्+क्त प्रत्यय (स्त्री०)।

तल्लघु—तत्+लघु। लघु=शीघ्र।

समाश्वसिहि—तसल्ली रखो, सम्+आ उपसर्ग श्वस् धातु लोट् मध्यम पुरुष एक०।

नैर्घृण्यम्—क्रूरता।

अश्रुसन्ततिमुचः—आँसू बहाती हुई, अश्रूणां सन्ततिः अश्रुसन्ततिः। अश्रुसन्ततिं मुञ्चति सा अश्रुसन्ततिमुक् तस्याः, उपपद तत्पुरुष।

क्षिपन्त्याः—प्रेरित करती हुई का, क्षिप्+शतृ प्रत्यय, स्त्रीलिङ्ग षष्ठी एक०।

दृशम्—दृष्टि को, दृश् शब्द द्वितीया एकवचन।

घृणा—दया।

अश्नतः—खाते हुए का, अश् धातु+शतृ प्रत्यय पुं० षष्ठी एक०।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

खगाधिपः——गरुड़, खगानाम् अधिपः (स्वामी) तत्पुरुष समास।

विहिता——की है, वि उपसर्ग धा धातु क्त प्रत्यय स्त्रीलिंग प्र० एक०।

वन्ध्या——निष्फल।

कारुण्यपरिग्रहात्——दयालु बन कर, कारुण्यस्य परिग्रहात्, षष्ठी तत्पुरुष।

रुद्यते——रो रही है, रुद् धातु कर्मवाच्य लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

सानुकम्पेन——दयालु, अनुकम्पया सहितः सानुकम्पः, बहुव्रीहि समास, तेन सानुकम्पेन।

प्रेषितः——भेजा है।

सकरुणम्——करुणापूर्वक। करुणया सह, अव्ययीभाव समास।

कण्ठगतप्राणम्——आसन्नमृत्यु। कण्ठं गताः प्राणाः यस्य तम्, बहुव्रीहि समास।

त्राये——बचाता हूँ। त्रा धातु लट् उत्तम पु० एक०।

तत्+यावत्+उपसर्पामि——(तो पास जाता हूँ)।

अम्ब !——हे माँ। अम्बा शब्द से सम्बोधन एक०।

परिरक्षकः——रक्षा करने वाला। परि+√रक्ष्+ण्वुल् (अक) प्र० एक०।

परित्राणम्——रक्षा। परि+√त्रा ल्युट् प्रत्यय (अन) नपुं प्र० एक०।

आच्छाद्य——ढक कर। आङ्+छद्+णिच्+क्त्वा >ल्यप् प्रत्यय।

विनतानन्दन——विनतायाः नन्दनः (पुत्रः)=गरुड (सम्बोधन का रूप)।

व्यापादय——मार डाल। वि+आ+पद्+णिच् म० पु० एक०।

परिकल्पिता——निश्चित की गई हूँ। परि+क्लृप्+क्त प्रत्यय स्त्री० प्र० एक०।

विक्लवत्वम्——दुःख। विक्लव शब्द से भाववाचक त्व प्रत्यय।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

अकरुणहृदयः—कठोर। अकरुणं हृदयं यस्य सः, बहुव्रीहि समास।

कुर्वीत—करे। कृ धातु आत्मनेपद विधिलिङ् प्र० पु० एक०।

भुजङ्गशत्रुः—गरुड। भुजङ्गानां शत्रुः, षष्ठी तत्पुरुष समास।

अलं त्रासेन—मत डरो। 'कदाचिद् गम्यमानापि क्रिया कारकं प्रयोजयति' इस सिद्धान्त से त्रासेन में तृतीया विभक्ति हुई।

अहि—सांप।

रक्तच्छटा—खून की चमक। रक्तच्छटा षष्ठी तत्पुरुष समास।

चर्चित—भरी हुई।

चण्ड—भयानक।

गरुत्मान्—गरुड।

मरणभीता—मौत से डरी हुई।

मा भैषीः—मत डरो।

त्वत्सुतसंरक्षणार्थम्—तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए।

आयातः—आया हूँ। आ+या+क्त, प्र० पु० एक०।

अभिहितेन—कहे जाने से। अभि+√धा+क्त, तृतीया एक०।

वध्यचिह्नम्—फांसी का चिन्ह।

प्रावृत्य—लपेट कर। प्र+आ+वृ+क्त्वा >ल्यप्।

आहारयितुम्—खाने के लिए। आ+√हृ+णिच्+तुमुन् प्रत्यय।

पिधाय—बंद करके। अपि+धा+क्त्वा >ल्यप्।

प्रतिहतम्—नष्ट हो। प्रति+हन्+क्त नपुं० प्र० एक०।

निर्विशेष—समान।

श्वपचः—चाण्डाल। श्वानं पचति, उपपद तत्पुरुष।

निजघ्ने—मारा था।

कृततदुपकृतिः—जिसने उसका उपकार किया है। तस्य उपकृतिः तदुपकृतिः, षष्ठी तत्पुरुष समास, कृता तदुपकृतिर्येन स कृततदुपकृतिः, बहुव्रीहि समास।

तार्क्ष्यः—गरुड।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

निर्व्याजा—स्वच्छ, सरल ।

बद्धकक्षाणाम्—कमर कसे हुओं का। बद्धं कक्षं यैः ते तेषां, वहुव्रीहि समास ।

मुच्यताम्—छोड़ दो ।

अध्यवसाय—निश्चय ।

लब्धावसरस्य—जिसे अवसर मिला है । लब्धः अवसरः येन सः तस्य, वहुव्रीहि समास ।

अन्तरायः—विघ्न ।

दीयताम्—(दो) दा धातु कर्मवाच्य लोट् प्रथम पु० एक० ।

अनुकम्पनीयाः—दया के पात्र ।

जह्यात्—त्यागे √हा विधिलिङ् प्रथम पुरुष एक० ।

अभ्युपायः—उपाय ।

आयत्तः—अधीन । आ+यत्+क्त प्र० एक० ।

म्रियमाणे—मरणोन्मुख, √मृ+शानच् सप्तमी एक० ।

जीवति—जीने पर । √जीव्+शतृ पुँल्लिंग सप्तमी एक० ।

जीवति—जीवित है । जीव् लट् प्र० पु०एक० ।

जीवन्तीम्—जीवितम् । √जीव्+शतृ स्त्री० द्वितीया एको० ।

पुरस्कृत्य—आगे कर ।

निवर्तस्व—लौट जाओ ।

सन्निकृष्टम्—निकट में ।

विपन्न—(मृत) वि+√पद्+क्त ।

पन्नग—सर्प ।

कङ्काल—अस्थियाँ ।

सङ्कुलम्—भरे हुए ।

चञ्चत्—चमकती हुई ।

उद्धृत—निकाले हुए ।

पिशित—मांस ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

लव—खंड ।

गर्द्धा—लालसा ।

सान्द्र—घना ।

उद्वान्ताः—निकली हुईं ।

शिखिशिखा—आग की लपटें ।

शिवानाम्—गीदड़ियों की ।

स्रुत—बहती हुई ।

बहल—अधिक ।

वसा—चर्वी ।

विनायक—गरुड ।

आहितप्रीति—सन्तुष्ट करने वाला । आहिता प्रीतिः येन तत् (श्मशानम्), बहुव्रीहि समास ।

गतौ—योनि में, जन्म में ।

भूयाः—भू धातु आशीर्लिङ् मध्यम पु० एक० ।

पश्चिमम्—अन्तिम ।

उज्झित्वा—छोड़कर । उज्झ+क्त्वा ।

वहतः—पड़ते हैं, चलते हैं ।

उत्थाय—(उठकर) उद्+स्था+क्त्वा>ल्यप् ।

अनुतिष्ठामि—पालन करता हूँ । अनु+स्था का लट् उ० पुरुष एक० ।

प्रसन्नकाश्यपम्

कोविदमुदावहः—विद्वानों को प्रसन्न करने वाला । कोविदानां मुद् कोविदमुद्, षष्ठीतत्पुरुष समास । कोविदमुदम् आवहति=(जनयति इति) कोविदमुदावहः, उपपदतत्पुरुष समास ।

कौतुकी—कुतूहली, उत्सुक, कौतुकमस्यास्ति । कौतुक+(मत्वर्थीय) इन् ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

उपस्पृश्य—आचमन करके । उप + √स्पृश् + क्त्वा > ल्यप् ।

विघटयिष्यति—कम करेगा ।

कातरा—घबराई हुई ।

मर्कट—बन्दर ।

भेक—मेंढक ।

अर्भक—बच्चा ।

शीकर—जल की बूंद ।

वीचि—लहर ।

परिहृत—दूर किया गया ।

अमित—अधिक ।

अम्बुजलोचने—कमलनयनि ! अम्बुजे इव लोचने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, बहुव्रीहि समास ।

सन्निधानात्—निकट होने से । सम् + नि + √धा + ल्युट् । पञ्चमी एक० ।

वाहान्—घोड़ों को ।

सान्द्र—घने ।

प्ररूढ—उगे हुए ।

प्रसूननिकर—फूलों का समूह ।

आतिथ्यम्—अतिथि सत्कार । अतिथये इदम् आतिथ्यम् ।

अतर्कित—अकस्मात् ।

रथ्यान्—घोड़ों को ।

खरकिरण—सूर्य ।

मध्याह्नवेला—दोपहर ।

अजिरे—आंगन में ।

अवस्रंसनेन—खिसकने से ।

निसर्ग—स्वभाव, प्रकृति ।

दापयामि—दिलाती हूँ ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

स्तम्भीभूय—स्थिर होकर।
निर्निमेषा—एकटक। निर्गता निमेषा यस्याः सा, बहुव्रीहि समास।
आश्लिष्य—गले लगाकर, आङ्+श्लिष्+क्त्वा>ल्यप्।
अभ्यन्तरे—भीतर।

संस्कृत नाटकों* के कतिपय पारिभाषिक शब्द

रूपक—नटादि पर नायकादि का आरोप होने के कारण दृश्य-काव्य को रूपक कहते हैं। रूपक के दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क वीथि और प्रहसन।

नाटक—यह दृश्य-काव्य का वह भेद है जिसका कथानक पहिले से ही सुप्रसिद्ध होता है। इसमें पाँच सन्धियाँ रहती हैं। इसमें कम-से कम पाँच और अधिक-से-अधिक दस अंक पाये जाते हैं। इसका नायक प्रख्यातवंशी प्रतापवान् धीरोदात्त राजर्षि होता है। वह दिव्य भी हो सकता है और दिव्यादिव्य भी। इसमें अङ्गीरस एक ही होता है। वह शृङ्गार भी हो सकता है और वीर भी। शेष सब रस अङ्ग होते हैं।

प्रकरण—इसका कथानक लौकिक एवञ्च कवि-कल्पना-प्रसूत होता है। इसमें अङ्गीरस शृङ्गार रहता है। इसका नायक या तो ब्राह्मण होता है या मन्त्री या व्यापारी।

भाण—इसमें धूर्तों के चरित्र का निरूपण रहता है। अनेक प्रकार की अवस्थाओं का इसमें चित्रण पाया जाता है। यह एकाङ्की होता है।

---

*प्रस्तुत पुस्तक में नाटक शब्द का प्रचलित अर्थ में प्रयोग किया गया है। वस्तुतः यह एक पारिभाषिक शब्द है। शास्त्री की दृष्टि से इसका एवंविध प्रयोग अनुचित है। पर चूँकि हिन्दी में यह शब्द 'ड्रामा' के अर्थ में प्रचलित हो चुका है इसीलिए इसे यहाँ अपना लिया गया है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

व्यायोग—इसका कथानक सुप्रसिद्ध होता है। स्त्री पात्र इसमें अपेक्षाकृत कम होते हैं। गर्भ और विमर्श सन्धियों का इसमें अभाव रहता है। इस एकांकी रूपक में पुरुष पात्रों की प्रचुरता रहती है। नायक इसका सुविख्यात होता है।

समवकार—देवासुर सम्बन्धी कथानक इसमें पाया जाता है। विमर्श सन्धि के सिवाय सभी सन्धियाँ इसमें पाई जाती हैं। अङ्क इसमें तीन होते हैं।

डिम—इसका कथानक सुप्रसिद्ध होता है। माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त इत्यादि चेष्टाओं की इसमें भरमार रहती है। अङ्गीरस इसमें रौद्र होता है और शेष सभी रस अङ्ग। अङ्क इसमें चार होते हैं। विष्कम्भक और प्रवेशक का इसमें सर्वथा अभाव रहता है।

ईहामृग—इसके कथानक में प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध घटनाओं का सम्मिश्रण रहता है। मुख, प्रतिमुख और निर्वहण—ये तीन सन्धियाँ इसमें पाई जाती हैं। यह एक चार अङ्कों का दृश्य-काव्य होता है।

अङ्क—यह एक एकाङ्की दृश्य-काव्य है जिसमें साधारण पात्र रहते हैं इसका अङ्गीरस करुण है।

वीथि—इसमें एक अङ्क रहता है। आकाशभाषित के द्वारा इसमें उक्ति प्रत्युक्ति पाई जाती है। शृङ्गार का संकेत इसमें पर्याप्त रहता है और शेष रसों का कम।

प्रहसन—इसमें निन्दनीय चरित्रों का कवि-कल्पना-प्रसूत चित्र रहता है। इसका अङ्गीरस हास्य है। विष्कम्भक और प्रवेशक का इसमें सर्वथा अभाव रहता है : अङ्क इसमें एक पाया जाता है। सन्धि और सन्ध्यङ्गों की दृष्टि से इसमें और भाण में साम्य है।

नान्दी—यह देवताओं, ब्राह्मणों अथवा राजा आदि की इस प्रकार की स्तुति होती है जिसमें आर्शीवचन विद्यमान रहते हैं। इसमें शङ्ख, चन्द्र, कमल, चक्रवाक और कोकावेली का उल्लेख रहता है। इसमें या आठ पद रहते हैं या बारह।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना अथवा आमुख—जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के संग अपने-अपने कार्य से सम्बद्ध एवञ्च आने वाली घटनाओं का संकेत करने वाली वातचीत रोचक शब्दों में करते हैं उसे आमुख अथवा प्रस्तावना कहा जाता है।

विष्कम्भक—यह अङ्क के आदि में पाया जाता है। इसमें बीती हुई एवञ्च आने वाली घटनाओं का संकेत रहता है। इसमें सब बात संकेत में कही जाती है। यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और मिश्र। जिसमें मध्यम कोटि के पात्र भाग लेते हैं वह शुद्ध होता है और जिसमें निम्न और मध्यम—इन दोनों कोटियों के पात्र भाग लेते हैं वह मिश्र होता है।

प्रवेशक—यह किन्हीं दो अङ्कों के बीच पाया जाता है। इसमें निम्न कोटि के पात्र ही रहते हैं। विष्कम्भक की तरह इसमें भी अतीत और आगामी घटनाओं का वर्णन रहता है।

अर्थप्रकृति—कथानक के वे रोचक अङ्ग जो कथावस्तु को फल प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। इनकी संख्या पाँच है—वीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।

सन्धि—यह एक प्रयोजन के साथ आन्वित कथांशों का अवान्तर एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध है। यह पाँच प्रकार की होती है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, और उपसंहार।

भरतवाक्य—नाटक के अन्त में पाया जाने वाला अथवा पाये जाने वाले श्लोक जिसमें दर्शकों के कल्याण की कामना की जाती है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, New Delhi. Digitized by eGangotri